संवादसेतु

मीडिया का आत्मावलोकन

अंक : 10 | पृष्ठ : 20 | मई 2012 | नयी दिल्ली

पॉल दिनाकरण पर मीडिया खामोश क्यों ?

DR. PAUL DHINAKARAN

संवादसेतु

संपादक
आशुतोष

सह–संपादक
रवि शंकर

संपादक मंडल
अमल कुमार श्रीवास्तव
नेहा जैन
सूर्यप्रकाश

कार्यालय
प्रेरणा, सी–56/20,
सेक्टर–62, नोएडा

संपर्क:
0120-2400335
mail@samvadsetu.com
वेब : samvadsetu.com

अनुरोध

संवादसेतु की इस पहल पर आपकी टिप्पणी एवं सुझावों का स्वागत है। अपनी टिप्पणी एवं सुझाव कृपया उपरोक्त ई–मेल पर अवश्य भेजें।

'संवादसेतु' मीडिया सरोकारों से जुड़े पत्रकारों की रचनात्मक पहल है। 'संवादसेतु' अपने लेखकों तथा विषय की स्पष्टता के लिए इंटरनेट से ली गई सामग्री के रचनाकारों का भी आभार व्यक्त करता है। इसमें सभी पद अवैतनिक हैं।

अनुक्रमणिका

संपादकीय 2

आवरण कथा
पॉल दिनाकरण पर मीडिया खामोश क्यों? 3
बाबा बनाते चैनल 6

परिप्रेक्ष्य
उमा का सवाल, मीडिया में बवाल 7

साक्षात्कार
'खुद कमाओ, खुद खाओ' की नीति से शुरू हुआ पेड न्यूज का सिलसिला– हेमंत विश्नोई 9

लेख
पत्रकारिता और हिंदी की बिगड़ती स्थिति 12

संस्मरण
कर्तव्य को समर्पित थे दुर्गा प्रसाद मिश्र 13

न्यू मीडिया
चोरी सूचनाओं की भी होती है... 15

परिचर्चा
सोशल नेटवर्किंग बनाम मुख्य धारा की मीडिया 16

विविधा
वेबमीडिया की बढ़ती संभावनाएं 17
आज की मीडिया रोग ग्रसित हो चुकी है: श्री रामबहादुर राय 18
समाज से ज्यादा ताकतवर कोई नहीं : विश्नोई 19

मीडिया शब्दावली 20

लोकतांत्रिक व्यवस्था स्वीकार करने के साथ ही यह सुनिश्चित था कि राष्ट्रीय परिदृश्य में मीडिया की महत्वपूर्ण भूमिका रहेगी। स्वतंत्रता आन्दोलन में अपने अकल्पनीय योगदान के कारण देश की मीडिया इसकी हकदार भी थी। आजादी के शुरुआती सालों में मीडिया ने अपनी इस भूमिका को निभाया भी।

दुर्भाग्य से बढ़ती उम्र के साथ–साथ लोकतंत्र छीजता गया। उसकी काया बनी रही किन्तु आत्मा खोखली होती गयी। भ्रष्टाचार और मौकापरस्ती ने समूची व्यवस्था को अपने चंगुल में जकड़ लिया। इस पर चोट करने की जिम्मेदारी जिस मीडिया की थी, वह खुद भी अपनी धार खो बैठा। मिशनरी से व्यापारी बने अखबार मालिकों ने जहां मुनाफे को अपना ध्येय बना लिया वहीं व्यापारियों ने मीडिया के विशेषाधिकारों का लाभ लेने के लिये मीडिया की दुनियां में प्रवेश किया। आज हालत यह है कि आटा, चीनी और डीजल बेचने से लेकर लकड़ी–बजरी बेचने वाले ठेकेदारों तक ने अखबार निकालना या चौनल चलाना शुरू कर दिया है। व्यावसायिक ईमानदारी इन मीडिया घरानों को लिये गौण हैं और निजी मुनाफा प्राथमिकता।

ऐसा नहीं है कि यह गिरावट केवल मीडिया में ही है। सच तो यह है कि लोकतंत्र के सभी स्तंभ जिस पतन के शिकार हैं, उनका प्रतिफलन ही मीडिया की गिरावट है। हर अंग अपनी गिरावट की पूरी कीमत वसूल कर रहा है और इस गिरावट पर कोई सवाल न उठे, इसके लिये मीडिया का साथ चाहता है। इसके लिये मीडिया को लाभकारी मूल्य भी चुकाया जा रहा है। हाल ही में सामने आया आभिषेक मनु सिंघवी का सीडी प्रकरण लोकतंत्र के तीनों स्तंभों के पतन और मीडिया के साथ उनकी दुरभिसंधि की जीती–जागती मिसाल है। संसद, सरकार, सत्ता, प्रतिपक्ष, सभी खामोश हैं। अपनी सक्रियता की पहचान बना चुकी न्यायपालिका यह जानते हुए भी कि कोई आदमी अपने आचरण से नागरिकों को यह संदेश देने का प्रयास कर रहा है कि सत्तारूढ़ दल के किसी प्रभावशाली व्यक्ति के साथ शारीरिक संबंध स्थापित कर न्यायमूर्ति बना जा सकता है, अनेक मामलों पर स्वतः संज्ञान लेने वाली न्यायपालिका इस घटनाक्रम पर मौन है।

इन परिस्थितियों में मीडिया का एक हिस्सा बिकाऊ नजर आता है तो दूसरा बेबस। बिकाऊपन और बेबसी, दोनों ही मीडिया के कर्तव्यच्युत होने की कहानी कह रहे हैं। वर्तमान परिदृश्य न तो लोकतंत्र की जीवंतता को प्रदर्शित करता है, न ही उसकी प्रौढ़ता को। यह अपने ही घर में लाचार हो चुके किसी बूढ़े की कहानी सा लगता है जिसकी अपनी संतानों की नजर में ही उसके लिये कोई जगह नहीं। स्वतंत्र भारत की संसद के साठवीं सालगिरह के इस जश्न में नकली मुखौटे लगाये उछलते–कूदते पात्रों को पथरायी आंखों से ताक रहा लोकतंत्र अपना ही विद्रूप नजर आता है।

भारतीय संसद अपनी प्रथम बैठक की षष्ठिपूर्ति मना रही है। 13 मई 1952 को इसकी पहली बैठक हुई। इस बैठक में चर्चा में भाग लेने वाले सांसदों में प्रथम राष्ट्रपति डॉ राजेन्द्र प्रसाद, प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू, प्रथम लोकसभा अध्यक्ष गणेश वासुदेव मावलंकर, वल्लभ भाई पटेल, डॉ भीमराव अम्बेडकर जैसे दिग्गज मौजूद थे। यही सदन था जिसने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को मौलिक अधिकार ही नहीं माना बल्कि उसे पोषण भी दिया। जनता के साथ सरकार के संवाद का माध्यम मानते हुए सदन की कार्यवाही को मीडिया द्वारा जन–जन तक पहुंचाने का अधिकार दिया गया। इस कर्तव्य को निभाने के लिये मीडिया को विशेषाधिकार दिये गये। सुचारु रूप से काम करने के लिये सदन के भीतर मीडिया के लिये सुविधाएं जुटायी गयीं।

यह संसद की षष्ठिपूर्ति का अवसर है तो संसद और मीडिया का संबंध के भी साठ साल पूरे होने का अवसर है। लोकतंत्र के स्तंभ के रूप में दोनों ने साथ–साथ अपनी यात्रा पूरी की है। इस बीच दोनों के संबंध कभी नरम तो कभी गरम रहे हैं। अनेक प्रश्नों पर मीडिया संसद के साथ खड़ी हुई तो कुछ बार उसके खिलाफ आक्रामक तेवर भी दिखाये। संसद के भीतर जब लोकतंत्र की हत्या का कुचक्र रचा गया तो इसी मीडिया के एक तबके ने उसे सीधी चुनौती दी।

जीवन मूल्यों के क्षरण के चलते संसद के दामन पर दाग लगे हैं तो मीडिया भी दूध की धुली नहीं रह गयी है। लेकिन इस दौर में भी दोनों ही जगहों पर ऐसे अनेक लोग मौजूद रहे जो न केवल गिरावट को थामे हैं बल्कि अंधेरे में उजली रेखा की भांति प्रकाश का स्त्रोत बने हुए हैं। षष्ठिपूर्ति के अवसर पर संसदीय लोकतंत्र के इन कीर्ति स्तंभों का स्मरण पाथेय बन सकता है।

भवदीय
संपादक

पॉल दिनाकरण पर मीडिया खामोश क्यों ?

आशीष कुमार 'अंशु'

'रामदेव बाबा ने लंबे समय में संपत्ति बनाई तो निर्मल बाबा के 'दरबार की किरपा' ने कम समय में संपत्ति जोड़ी। पॉल दिनाकरण की संपत्ति इन सबसे कई गुना अधिक है। मीडिया को निर्मल बाबा दिखते हैं, बाबा रामदेव दिखते हैं, आसाराम बाबा दिखते हैं तो पॉल बाबा क्यों नहीं जो पैसे लेकर चंगाई बांटते हैं? मीडिया में इसे ठीक से उठाए कौन? जनता को बताए कौन? यहाँ बाबा–बाबा में फर्क करने वाले हमारे विद्वानों का दोहरा चरित्र साफ जाहिर हो रहा है। ज्यादा अच्छा यह नहीं होता कि कोई क्रिश्चियन समाज से पॉल के खिलाफ उठ खड़ा होता?'

लिमटी खरे का यह सवाल अकेले उनका नहीं है। यह सवाल देश की वह आबादी जानना चाहती है, जो इस भेद को समझ रही है। नाम के आगे बाबा लगने का और नाम के आगे पॉल लगने का भेद। निर्मल बाबा अब इस देश में एक जाना पहचाना नाम है। तीस चैनलों पर महीने में खर्च किए गए बाबा के दस करोड़ उनकी ब्रांडिंग में काम आए और वे देश के बड़े बाबाओं में गिने जाने लगे। बाबा बनने से पहले निर्मलजीत सिंह नरूला उर्फ बाबा निर्मल झारखंड में ठेकेदारी किया करता था। वह धंधा ठीक–ठीक नहीं चला तो हाइटेक बाबा हो गए और कुछ ही समय में कई सौ करोड़ की संपत्ति बनाई।

बाबा निर्मल की पोल खुलने के बाद अब ईसाई धर्मगुरु पाल दिनाकरण के कृपा कारोबार पर थोड़ी बात होनी शुरू हुई है। यह इंसान कई तरह से जनता को लूटता है, एक तरीका बिजनेस ब्लेसिंग भी है। अगर आप कोई बिजनेस शुरू करना चाहते हैं या अपने बिजनेस पर कृपा चाहते हैं तो अलग से पैसे दीजिए, आपको कृपा मिल जाएगी। ये जो पॉल है, वह 2008 में अपने पिता की बनाई गई 'कारुण्या यूनिवर्सिटी और जीसस कॉल्स' नामक संस्था का सर्वेसर्वा है। पॉल दिनाकरण अपने प्रवचनों से ईसा मसीह की कृपा बरसाने का दावा करता है और इस काम में उनके परिवार के बाकी सदस्य भी शामिल है। यीशु की महिमा गाते–गाते उसने लाखों लोगों को क्रिश्चियन बनने के लिए भी प्रेरित किया है। हमारा समाज कितना भी प्रगतिशील दिखता हो लेकिन यहां एक बड़ा समाज अब भी है जो अंधविश्वास में यकीन रखता है। ऐसे अंधविश्वासी लोगों को पॉल आसानी से अपने चंगुल में फंसा लेता है।

पॉल दिनाकरन का सालाना टर्नओवर 5 हजार करोड़ से ज्यादा का है। पॉल भारत सरकार की नेशनल मॉनिटरिंग कमेटी फॉर माइनॉरिटी एज्यूकेशन का सदस्य भी है। पॉल का एक 24 घंटे का चैनल रेनबो भी है जिसके जरिए उसकी सभाओं का प्रसारण करीब 9 देशों के टीवी चैनलों पर होता है। पॉल 'जीसस काल्स मिनिस्ट्री' के नाम पर मैरिज ब्यूरो, जॉब ब्यूरो और अन्य कार्य भी करता है। पॉल की वेबसाइट पर ऑनलाइन डोनेशन की मांग की जाती है। पॉल बाबा की वेबसाइट पर एक बिजनेस ब्लेसिंग प्लान भी है, जिसमें बिजनेस के लिए अलग से प्रार्थना करने के एवज में फीस रखी गई है। गौरतलब है कि यहां बिकी हुई प्रार्थना वापस नहीं होती। माने प्रार्थना ना हुई, पॉल साहब के परचून की दुकान में बिकने वाला लेमनजूस हो गया।

बाबा निर्मल से पॉल की तुलना करना भी गलत है। बाबा निर्मल के अंधविश्वास का कारोबार पॉल के सामने बिल्कुल छोटू सा नजर आता है। बाबा निर्मल से 17 गुना अधिक धन–दौलत के मालिक पॉल दिनाकरण हैं, इसको लेकर यह बात भी ध्यान देने वाली है कि जो इन्सान हर मर्ज को ठीक करने का दावा करता हो उसी के पिता जो खुद भी क्राइस्ट से मिल चुके होने का दावा करते हैं, वो 2003 में अस्पताल में भर्ती होते हैं। अब जो बाप–बेटे दुनियां का दुख दूर करते हैं, क्राइस्ट से मिली शक्ति का हवाला देकर विकलांगों की विकलांगता टेलीविजन सेट के सामने दूर करते हैं, अब जब क्राइस्ट से मिला ये

इन्सान खुद को अस्पताल तक में भर्ती होने से नहीं बचा पाया और न ही उसका बेटा जो खुद भी क्राइस्ट से मिलने का दावा करता है और रोगियों को और रोग को ठीक करने की भी बात करता हैं। जब दिनाकरण अपने इतने चमत्कारी शक्तियों वाले पिता को अपनी चमत्कारी शक्तियों के बावजूद बचा नहीं पाया तो यह आम जनता को बचाने का दावा कैसे करता है? क्या ये शोध का विषय नहीं है मीडिया के लिए? क्या सारे सवाल सत्यजी साईं और आसाराम जी से ही पूछे जाएंगे? थोड़े सवाल पॉल साहब से भी पूछ लीजिए?

इस देश में कुछ लोग छिद्रान्वेषी होते हैं। छिद्र तलाशते रहते हैं। छिद्र तलाशने में बुराई नहीं है, बुराई है नीयत में। सिर्फ इसलिए किसी को अपमानित करना और उसकी पद्धति की आलोचना करना क्योंकि वह धर्म या जाति विशेष से आता है, हमारी ओछी मानसिकता का ही प्रतिनिधित्व करता है। यदि बाबा निर्मल की आलोचना इसलिए की जा रही है क्योंकि वह धर्म के नाम पर अंधविश्वास फैलाकर ठगी का धंधा कर रहा है फिर इसी तर्ज पर काम करने वाले बाबा के भी बाबा दिनाकरण की आलोचना क्यों नहीं होनी चाहिए? सिर्फ इसलिए कि वह अल्पसंख्यक समुदाय से है या फिर यह कुछ लोगों के राजनीतिक हित में नहीं है इसलिए?

दीपक चौरसिया देश के बड़े पत्रकार हैं, उनसे बाबा रामदेव के एक समर्थक प्रदीपक कुमार जानना चाहते हैं, जिस भाषा में बाबा रामदेव से साक्षात्कार कर लेते हैं, है उनमें साहस कि एक बार उसी भाषा में पॉल दिनाकरण से दो बात कर लें? वैसे यह सवाल सिर्फ स्टार न्यूज या फिर दीपक चौरसिया पर लागू नहीं होता। सभी चैनलों और सभी पत्रकारों पर लागू होता है।

पॉल दिनाकरण के सम्बन्ध में स्टार न्यूज अपने आधिकारिक वेबसाइट पर लिखता है– ''पॉल दिनाकरण दक्षिण भारत के जाने–माने ईसाई धर्मगुरु और धर्म प्रचारक हैं। पॉल दिनाकरन चेन्नई के मशहूर धर्म गुरु जीएस दिनाकरन के बेटे हैं। दिनाकरन भी अपनी विशाल सभा के जरिए लोगों को प्रवचन देते हैं। दिनाकरन अपने उपदेश से इलाज का दावा करते हैं। वो कारुण्य यूनिवर्सिटी के कर्ताधर्ता भी हैं। निर्मल बाबा की तरह टीवी पर दिनाकरण के भी कार्यक्रम प्रसारित होते है और विवादों से भी वो अछूते नहीं रहे हैं। दिनाकरन पर लोगों के धर्मपरिवर्तन के गंभीर आरोप लगते रहे हैं।''

इस साधु भाषा में लिखी गई खबर के लिए स्टार टीम को साधुवाद कहा जा सकता है लेकिन इस भाषा पर उन्हें उन साधुओं के लिए भी कायम रहना चाहिए जो अपने नाम के आगे पॉल नहीं लगाते।

पॉल दिनाकरण की कृपा से सुबोधकान्त सहाय मंत्री बने, यह दावा स्वयं दिनाकरण का ही है। डीजीएस दिनाकरण जो पॉल बाबा के पिता थे, भारतीय राजनीति के बड़े बड़े महारथियों ने उनके सामने शीश झुकाया है।

स्टार न्यूज ने ईसाई धर्म गुरु पॉल दिनाकरण के 'कृपा कारोबार' पर न्यूज बहस दिखाने से पहले एक 'डिस्क्लेमर' चलाया, जिसमें कहा गया कि हमारा मकसद ईसाई धर्म को ठेस पहुँचाने का नहीं है।

स्टार न्यूज का यह कदम वास्तव में स्वागत योग्य है लेकिन क्या हम सब आशा कर सकते हैं कि स्टार समेत सभी न्यूज चैनल जब हिंदुओं या मुसलमानों के या अन्य के धर्मों के विषय से जुड़ी बहस करे तो ऐसे ही "डिस्क्लेमर" चलायें एवं दायरे व मर्यादा में रहकर बहस करें। किसी भी ऐरे–गैरे को "तर्कशास्त्री" बता कर किसी भी धर्म का मजाक उड़ाने की छूट कोई भी चैनल न दे।

पॉल दिनाकरण और बाबा निर्मल की कहानी मिलती जुलती ही है। 4 सितंबर 1962 को जन्मे डॉक्टर पॉल दिनाकरण ने भी धर्म प्रचार की शुरुआत कुछ बाबा के अंदाज में ही की। पॉल ने कहा कि जब वे युवा थे तो अपने भविष्य को लेकर परेशान थे। पॉल के मुताबिक उस दौरान उनके पिता ने उनकी बात ईसा मसीह से कराई और उन्हें ज्ञान दिलाया।

अपने पिता के निधन के बाद पॉल ने भी ईसाई धर्म के प्रचार के नाम पर सभाएं करनी शुरू कर दी। पॉल बाबा अपनी प्रार्थनाओं की शक्ति से अनुयायियों को शारीरिक और अन्य समस्याओं से निजात दिलाने का दावा करते हैं। पॉल भक्तों को प्रीपेड कार्ड की तरह प्रेयर पैकेज बेचते हैं। यानी, वे जिसके लिए ईश्वर से प्रार्थना करते हैं, उससे इसके लिए मोटी रकम भी वसूलते हैं। पॉल की सभाओं में 3000 रुपए में बच्चों और परिवार के लिए प्रार्थना करने की व्यवस्था

है। दुनिया भर में उनके 30 प्रेयर टॉवर हैं। पॉल की सभाओं में एक लाख तक भक्त शामिल होते हैं।

पॉल और बाबा में जो थोड़ा फर्क है, वह यह कि बाबा निर्मल पर धर्म परिवर्तन कराने जैसे गंभीर आरोप नहीं लगे हैं और बाबा निर्मल पर स्त्रियों के शारीरिक शोषण का भी आरोप नहीं है।

अब लगता है कि बाबाओं की ठगी पर जार–जार रोने वालों की जुबान पर अचानक लकवा मार गया है। वे खुद को पॉलीटिकली करेक्ट करने के चक्कर में हैं। शायद, सुपारी बाबाओं की ली है तो भला पॉल (दिनाकरण) पर क्यों बोलें?

वैसे अब इस बात का खुलासा तो हो ही गया है कि केंद्र की यूपीए सरकार यीशु की वजह से ही बची है। अल्लाह और राम उनके काम नहीं आए। इस बात का खुलासा पॉल के पत्र से ही हुआ, जो उन्होंने सोनियाजी को भेजा था।

साल 2008 में यूपीए–1 जब संसद के भीतर विपक्ष द्वारा लाये गए अविश्वास प्रस्ताव का सामना कर रही थी तब इस संकट की घड़ी में पॉल दिनाकरण के नेतृत्व में चर्च के सभी अधिकारियों ने यूपीए को संकट से उबारने के लिए प्रार्थना की थी। उस दौरान सर्वशक्तिमान ईश्वर ने अपने सेवक पॉल दिनाकरण को जो कुछ कहा था उन बातों का जिक्र दिनाकरण ने 10 जुलाई 2008 को कांग्रेस अध्यक्ष सोनिया गाँधी को लिखे एक पत्र में किया है।

पॉल दिनाकरण सोनिया को पत्र में लिखते हैं ," वर्तमान संकट के सन्दर्भ में मैंने कुछ समय सरकार और आपके लिए प्रार्थना में बिताया। जैसे 2004 के पिछले चुनाव के दौरान भी हमने 14 बड़े शहरों में 72 घंटों की प्रार्थना सभाएं की जिसके फलस्वरूप सर्वशक्तिमान ईश्वर ने आपकी पार्टी को सत्ता सौंपी।''

पॉल दिनाकरण आगे लिखते हैं ,"इस बुरे वक्त में मैंने आपके भले के लिए जो प्रार्थना की है, पवित्र शक्तियों ने मुझसे कहा कि आप अपने सरकार की सुरक्षा देखकर आश्चर्यचकित हो जायेंगे और यह अभी ही नहीं आगामी लोकसभा चुनाव में भी इसका असर दिखाई देगा।''

पिछले साल देश के जल संसाधन राज्य मंत्री विन्सेंट एच पाला द्वारा एक प्रार्थना सभा का आयोजन किया गया था, विवादास्पद धर्मगुरु पाल दिनाकरण जो कि अपने भीतर ईश्वरीय शक्ति होने की बात कह कर भक्तों को ठीक करने का दावा करते हैं, उसकी अगुवाई में की गयी इस प्रार्थना सभा में सोनिया गाँधी समेत अन्य कई सांसदों ने हिस्सा लिया था। बाद में मंत्री महोदय द्वारा एक पत्र लिखकर पाल दिनाकरण को इस प्रार्थना सभा में आने के लिए धन्यवाद प्रेषित किया गया और उनसे देश के सांसदों को पुनः सेवा देने की गुजारिश भी गयी।

क्या इस देश के नागरिक मान लें, कि पॉल दिनाकरण ईसाई हैं, इस वजह से उनको कोई कुछ नहीं बोलेगा, चाहे वे कुछ भी करते, कराते रहे हों। मीडिया, पत्रकार आदि उनके बारे में एक शब्द भी नहीं बोलेंगे या नहीं लिखेंगे। ये तो केवल भारतीय संस्कृति, धर्म आदि के ही बारे में उल्टे–सीधे तर्क गढ़ सकते और उस पर व्यंग्य कर सकते हैं। व्यंग्य में कोई बुराई नहीं है लेकिन 243 करोड़ के मालिक बने बाबा निर्मल के खिलाफ इतना बड़ा अभियान चलाने वाली मीडिया क्यों पांच हजार करोड के मालिक पॉल दिनाकरण को लेकर खामोश है।

पॉल दिनाकरण के सम्बन्ध में पढ़ रहा हूं, थोड़ी बहुत जानकारी भी इकट्ठी की। अब लगता है कि बाबा निर्मल जैसे बाबा तो पॉल की फोटो कॉपी जैसे हैं। बाबा कृपा बेच रहे हैं और पॉल प्रार्थना बेच रहे हैं, लेकिन बाबा को पानी पी–पी कर कोसने वालों को पॉल के मामले में मानों सांप सूंघ गया है। क्या पॉल को लेकर इसलिए सबकी बोलती बंद है कि इस पर समाज में बोलने वाले व्यक्तियों की पहचान साम्प्रदायिक व्यक्ति के तौर पर होगी या पॉल का विरोध करना ईसाइयत का विरोध करना है? विद्वानों का और पत्रकारों का यह दोहरा चरित्र समझना आसान नहीं। मैं आशान्वित हूं, वक्त बदलेगा और वे साम्प्रदायिकता की अपनी गढ़ी हुई परिभाषाओं से बाहर आएंगे।

क्या यह सच है कि जिस तरह मीडिया और नागरिक समाज बाबा निर्मल के खिलाफ लिख रहा था और दिख रहा था, पॉल दिनाकरण के मामले में संकोच बरत रहा है, जबकि उनकी वेबसाईट को देख कर ही उनका फर्जीवाडा थोडा–थोडा समझ में आ जाता है। पॉल का तो दावा यह है कि जीसस क्राइस्ट से उन्होंने बात की है। क्या कहीं आप भी यह तो नहीं सोच रहे कि पॉल के खिलाफ बोलने से आपको सांप्रदायिक या ईसाई विरोधी समझ लिया जाएगा। ■

मीडिया में महिलाओं की स्थिति चिंताजनक

लोकतांत्रिक देश का चौथे स्तंभ व हक़ की लड़ाई लड़ने वाले मीडिया में महिलाओं की भागीदारी बेहद कम है। न्यूज मीडिया में जिला स्तर पर महिलाओं की भागीदारी सिर्फ २.७ प्रतिशत है।

गैर सरकारी संगठन मीडिया स्टडीज ग्रुप द्वारा जारी सर्वेक्षण रिपोर्ट के अनुसार बिहार, झारखंण्ड व ओडिशा सहित पांच राज्यों में जिला स्तर पर मीडिया में एक भी महिला पत्रकार नहीं है। जबकि ऑल इंडिया रेडियो में महिला पत्रकारों की स्थिति संतोषजनक है यहां जिला स्तर पर छह महिला पत्रकार, दो स्वतंत्र पत्रकार व एक महिला फोटोग्राफर है। चूंकि मीडिया समालोचनाओं से ज्यादा आलोचनाओं में रहती है और यह महिला पत्रकार व उनके परिजनों को गवारा नहीं होता है।

सर्वेक्षण रिपोर्ट के अनुसार पश्चिम बंगाल में ६.२५, गुजरात में ५.४, उत्तर प्रदेश में ३.५५, बिहार में ६.५६, कर्नाटक ८.२५ तथा सिक्किम १६.६७ प्रतिशत महिला पत्रकार हैं। वहीं हिन्दी इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में ११ प्रतिशत महिला पत्रकार हैं, अंग्रेजी इलेक्ट्रानिक मीडिया में ३२ प्रतिशत महिला पत्रकार ऊँचे ओहदे पर हैं।

बाबा बनाते चैनल

जब अन्ना बाबा टेलीविजन के सेट पर उभर रहे थे। अपने आंदोलन के साथ, जब रामदेव बाबा भ्रष्टाचार के खिलाफ अपनी यात्रा में व्यस्त थे। जब श्री श्री रविशंकर जीवन जीने की कला के विस्तार में व्यस्त थे। श्री मोरारी और श्री आशाराम बापूद्वय टीवी पर अपने प्रवचन में व्यस्त थे। उसी दौरान एक व्यक्ति जूनियर आर्टिस्ट्स के साथ खुद के लॉच करने का पहला चरण पूरा कर चुका था।

अन्ना के आन्दोलन को लेकर यह बहस लंबी चली कि इस आन्दोलन को मीडिया ने खड़ा किया है अथवा यह कोई जन आन्दोलन है लेकिन बाबा निर्मल को लेकर कोई बहस नहीं है कि वे मीडिया द्वारा खड़े किए गए जिन्न हैं या वास्तविक आध्यात्मिक संन्यासी? यह आध्यात्मिक गुरू किसी को भी पैसे लिए बिना अपना दर्शन नहीं देता। आशाराम बापू ने एक बार इलैक्ट्रॉनिक मीडिया के लिए ''कुत्ता'' शब्द इस्तेमाल किया था जिसके सामने बोटी फेंककर कुछ भी करवाया जा सकता है। उन दिनों आशाराम के आश्रम से मीडिया में कुछ उन्हें अच्छी ना लगने वाली खबरें आ रहीं थीं। उस समय आम आदमी यही समझ रहा था कि मीडिया अपना कर्तव्य निभा रहा है। वास्तव में पेड न्यूज खबर छपने और ना छपने से अब एक कदम आगे बढ़ गया है। अब खबर के फालोअप ना करने के भी पैसे वसूले जा रहे हैं। पत्रकारिता और धंधा के बीच खींची हुई स्पष्ट लकीर को पहले बारीक किया गया और ना जाने यह लकीर कब मिट गई।

अनुमान है कि महीने के दस करोड़ के खर्च पर देश के तीस चैनल बाबा की उपस्थिति का उत्सव मना रहे हैं। इन चैनलों और पैसों की अकूत ताकत ने बाबा को पवित्र गाय बना रखा है। यदि बाबा में आध्यात्मिक भक्ति होती तो कानूनी नोटिस की जगह आध्यात्मिक भाक्ति का उपयोग करते। खुद पर उठ रही एक–एक जुबान को बंद करने की कोशिश की जगह कोई ऐसा चमत्कार करते कि सबकी जुबान खुद बंद हो जाती।

पिपरिया मध्य प्रदेश की एक दुकान पर देवी पार्वती, भगवान शिव और साईं बाबा से भी अधिक पोस्टर बाबा निर्मल का जब दिखा तो पोस्टरों के दिखने से भी अधिक दिलचस्प दुकान वाले का जवाब था ''जो बिकेगा वही तो रखेंगे।'' इस जवाब में कुछ नयापन नहीं है लेकिन इस जवाब में कुछ तो बात है जिसका हवाला पटरी बैठा एक पोस्टर वाला भी दे रहा है और दिल्ली की एक बहुमंजिली इमारत में बैठा एक चैनल का सीईओ भी दे रहा है। बेचने का फार्मूला दोनों का एक ही है।

वास्तविकता यही है कि निर्मल बाबा की वजह से दस करोड़ महीने का जब आम मिल रहा है और टीआरपी के तौर पर गुठलियों का दाम भी वसूल हो रहा है। ऐसे में आप किसी टीवी चैनल वाले से पत्रकारिता के मूल्यों पर बात करेंगे तो आपको मुख्य धारा का कोई भी गंभीर पत्रकार गंभीरता से लेने को तैयार नहीं होगा क्योंकि अब पत्रकारिता बदल गई है। प्रतिस्पर्धा पहले से बढ़ गई है। यह बिड़ला का नहीं, अंबानी का मीडिया युग है। तय है, बदलते युग में मूल्य भी बदलेंगे और नए मूल्य वही तय करेगा जो इस दौड़ में सबसे आगे होगा।

निर्मल दरबार के नेहरू प्लेस वाले दफ्तर कम बीपीओ में गया था। बाबा के मीडिया सेल के बारे में पता करने। वहां बताया गया कि बाबा जब सारी मीडिया में आ रहे हैं, फिर उन्हें मीडिया सेल की क्या जरूरत है? यदि बाबा के नेहरू प्लेस वाले दरबार में सीसीटीवी लगा हो तो कोई भी छह अप्रैल दोपहर दो और तीन के बीच में यह फुटेज देख सकता है, जिसमें बाबा की प्रतिनिधि महिला कहती है कि बाबा के भक्त बड़े–बड़े नेता, मंत्री, मुख्यमंत्री भी बाबा के सामने सिर झुकाते हैं। बाबा प्रतिनिधि यह बताने में असफल रही कि वह किस मुख्यमंत्री की बात कर रहीं हैं? दोनों हाथों से बाबा के ग्राहकों द्वारा पैसा बटोरने जैसे महत्वपूर्ण काम को करते हुए, बाबा प्रतिनिधि ने मुझसे बात की, इसके लिए उन्हें साधुवाद कहकर निकल गया।

''सिख धर्म के ग्रंथों में साफ–साफ कहा गया है कि करामात कहर का नाम है। इसका मतलब है जो भी करामात कर अपनी शक्तियां दिखलाने की कोशिश करता है, वह धर्म के खिलाफ काम कर रहा है। निर्मल को कई दफा यह बात मैंने समझाने की कोशिश भी की, लेकिन उसका लक्ष्य कुछ और है, उसको मैं क्या कह सकता हूं।'' यह बात झारखंड के एक वरिष्ठ नेता इंदर सिंह नामधारी ने एक वेबसाइट से बात करते हुए कही। निर्मल बाबा झारखंड के रहने वाले हैं, यह खुलासा उसी वेबसाइट की वजह से हुआ। इंदर सिंह नामधारी की पहचान झारखंड में ईमानदार नेता की रही है। निर्मल बाबा इन्हीं नेताजी के साले हैं।

इस पूरी कहानी में इस पक्ष को भी अनदेखा नहीं किया जा सकता कि अन्ना के आंदोलन के बाद समाज में साधु–संन्यासियों की प्रतिष्ठा एक बार फिर बढ़ गई थी, क्योंकि संन्यासी इस आंदोलन में जनभावना को समझते हुए जन आंदोलनकारी की भूमिका में आए थे। अब साधु–संन्यासियों की समाज में बढ़ रही प्रतिष्ठा राजनीति में सक्रिय लोगों के लिए बड़ी चुनौती बन गई थी। ऐसे समय में एक ऐसे संन्यासी की जरूरत राजनीति को भी थी, जो सिर्फ पैसे की भाषा जानता हो। जो पैसे लिए बिना दर्शन भी ना देता हो और अच्छी रकम दो तो अकेले में भी मिलने को तैयार हो जाता हो।

बाबा को पूरी तरह ताम–झाम से लांच करने के लिए माध्यम भी वही चुना गया, जिसकी वजह से अन्ना देश के बच्चे–बच्चे की जुबान पर आ गए। इसी माध्यम ने झारखंड में कई धंधों में असफल हो चुके निर्मलजीत सिंह नरूला को समाज की चर्चा के केन्द्र में ला दिया। वैसे आधिकारिक तौर पर इस व्यक्ति ने अभी तक अपने संबंध में लोगों को कुछ बताया नहीं है। खुद कई धंधों में असफल रहा व्यक्ति दूसरों की असफलता हरने का दावा कर रहा है। बाबा के काम में अध्यात्म से अधिक ठगी ही नजर आती है। बाबा में यदि वास्तव में आध्यात्मिक ताकत है तो उन्हें पारदर्शी होना चाहिए। बाबा को अपनी वेबसाइट पर आने वालों की पूरी सूची प्रकाशित करनी चाहिए। पूजा, पाठ, दसवंद के नाम पर जो कमाई है, उस पर बाबा कितना आयकर दे रहे हैं? इसका खुलासा करना चाहिए। यदि उनका दरबार किसी एनजीओ या ट्रस्ट के मार्फत चल रहा है तो समाज की भलाई के लिए वह कहां और क्या काम कर रहा है? बाबा यह सारी जानकारी अपने भक्तों से छुपा क्यों रहे हैं? भक्तों की इतनी कृपा उन पर है, जो लगभग प्रति दिन चार करोड़ रुपए बैठती है। चूंकि आमदनी की आधिकारिक जानकारी निर्मल दरबार नहीं देता, इसलिए यह रकम भी अनुमान से ही बताई जा रही है। जब निर्मल दरबार से इसकी जानकारी मिलेगी तो फिर सही–सही आंकड़ा आपके सामने आ पाएगा। ■

उमा का सवाल, मीडिया में बवाल

जयप्रकाश सिंह

प्रश्न पूछना पत्रकारिता का गुणधर्म और मूलधर्म है। प्रश्न पूछना पत्रकारिता की सीमा और सामर्थ्य है। प्रश्न पूछना पत्रकारिता का एकमात्र व्यवहारिक विशेषाधिकार है। पत्रकारिता के प्रश्न राज और समाज के बीच संवादसेतु बनाते हैं। यही प्रश्न नीतिनियंताओं को टोकते हैं, रोकते हैं ,सच्चाई का आईना दिखाते हैं और भविष्य का रास्ता भी बताते हैं। पत्रकारीय परिदृश्य में प्रश्न, उत्तर से भी अधिक महत्वपूर्ण बन जाते हैं। शायद इसी को ध्यान में रखकर आल्विन टॉफलर ने कहा है कि गलत प्रश्न का सही उत्तर प्राप्त करने से बेहतर है कि सही प्रश्न का गलत उत्तर प्राप्त किया जाए। पत्रकारिता के प्रश्न, व्यवस्था –विश्लेषण के लिए एक बेहतरीन संकेतक हैं।

लोकतांत्रिक शासनप्रणाली में पत्रकारिता के प्रश्नों का वजन और भी बढ जाता है। कई बार किसी एक पत्रकारीय प्रश्न से राजनीति की तस्वीर बदल जाती है। संसद में हंगामा होता है, सरकार पर खतरा मंडराता है और राजनेता 'नो कमेंट मोड' पर चले जाते हैं। लेकिन मई महीने के पहले सप्ताह में एक अद्भुत घटना देखने को मिली। पहली बार किसी राजनेता के सवाल से मीडिया की तस्वीर में व्यापक बदलाव देखने को मिला। पत्रकारों ने उमा भारती से निर्मल बाबा के सम्बंध में एक सवाल पूछा था। प्रश्न के उत्तर में उमा भारती ने एक दूसरा प्रश्न दाग दिया। उन्होंने कहा कि यदि निर्मल बाबा के खिलाफ अजीबोगरीब टोटकों के जरिए कृपा बरसाने और आर्थिक अनियमितता के आरोप हैं तो उनके खिलाफ कार्रवाई होनी चाहिए। लेकिन मीडिया को अपना ध्यान अन्य पंथों में सक्रिय चमत्कारी बाबाओं पर भी केंद्रित करना चाहिए। इसी संदर्भ में उन्होंने दक्षिण भारत में सक्रिय ईसाई धर्मप्रचारक पॉल दिनाकरन का नाम लिया। उमा भारती के इस प्रतिप्रश्न ने पॉल दिनाकरन को खबरिया चैनलों की सुर्खियों में ला दिया। अधिकांश चैनलों पर पॉल बाबा प्राइम टाईम का हिस्सा बने। मीडिया में पहली बार तर्कशास्त्रियों के तीर मतांतरण के अभियान में संलग्न ईसाई प्रचारकों पर चले। मीडिया ने पॉल की सम्पत्ति को खंगाला, उनके दावों की पोल खोली।

जांच–पडताल के दौरान पॉल दिनाकरन के संबंध में बहुत चौंकाने वाले तथ्य सामने आए हैं। पॉल दिनाकरन की सम्पत्ति निर्मल बाबा की सम्पत्ति से बीस गुना अधिक है यानी वह लगभग 5 हजार करोड की सम्पत्ति के मालिक हैं। वह स्वयं द्वारा स्थापित कारुण्य विश्वविद्यालय के कुलपति हैं। ईसाई पंथ का प्रचार–प्रसार करने वाले रेनबो टीवी चैनल के मालिक है। जीसस काल्स धर्मार्थ न्यास के संस्थाापक हैं। सामाजिक और शैक्षणिक क्षेत्र में वह सीशा नामक एक अन्य संस्था के जरिए सक्रिय हैं। दस देशों में उनके प्रेयर टॉवर है।

अकेले भारत में उनके 32 प्रेयर टॉवर है। पॉल दिनाकरन अपने सामूहिक प्रार्थना कार्यक्रमों का जिन विशेष जगहों पर आयोजन करते हैं, उसे प्रेयर टॉवर कहा जाता है। यह प्रेयर टॉवर पॉल दिनाकरन की संस्था जीसस काल्स की सम्पत्ति हैं।

लोगों के कल्याण के लिए वह प्रभु यीशु से प्रार्थना करते हैं और प्रार्थना के एवज में मोटी रकम वसूलते हैं। प्रार्थना करना उनका पैतृक धंधा है। पॉल दिनाकरन के पिता डीजीएस दिनाकरन का भी प्रमुख व्यवसाय प्रार्थना करना ही था। डीजीएस दिनाकरन तो सशरीर स्वर्ग जाने और ईसा मसीह से प्रत्यक्ष संवाद करने का भी दावा करते थे। पॉल दिनाकरन ने इस पैतृक धंधे का आधुनिकीकरण कर दिया है। अब आप बिना प्रेयर टॉवर जाए और बिना चेक दिए भी उनसे प्रार्थना करवा सकते हैं। प्रार्थना करने के लिए ऑनलाइन आवेदन कर सकते हैं और उनके खाते में ऑनलाईन ट्रांजैक्सन भी।

पॉल दिनाकरन ने प्रार्थना के लिए कई श्रेणियां निधारित कर रखी हैं। उनके पास बेचने के लिए प्रार्थनाओं का एक पैकेज है। हर छोटी बडी समस्या का निदान उनकी प्रार्थनाएं करती हैं। मंत्री पद तक दिलवाने का दावा करते हैं दिनाकरन। जितनी बडी प्रार्थना, उतनी मोटी रकम। रकम मिलने के बाद पॉल दिनाकरन प्रभु यीशु से प्रार्थना करते हैं। प्रार्थना के इस पैकेज की सबसे बडी खूबी यह है कि एक बार बिकी हुई प्रार्थना फिर वापस नहीं होती। यानी पॉल दरबार में प्रार्थना 'भूल चूक लेनी देनी' के लिए कोई स्थान नहीं है।

पॉल दिनाकरन पर अकेले तमिलनाडु में 15 हजार से अधिक लोगों को मतांतरित करने का आरोप है। उनकी भविष्यवाणियों पर नजर डालने से स्पष्ट हो जाता है कि वह लोगों को मतांतरण के लिए प्रेरित करते हैं। उन्होंने विश्व के सभी प्रमुख देशों के बारे में भविष्यवाणियां की हैं। वह स्पष्ट रुप से कहते हैं कि ईश्वरीय शक्तियां उन्हीं पर कृपा करेंगी जो ईसाइयत के रास्ते पर चल रहे हैं। वह प्रार्थना सभाओं में ईसाइयत की शरण में अपील करते हुए भी देखे जाते हैं।

मुद्दा यह है कि आसाराम बापू से लेकर निर्मल दरबार तक की सम्पत्ति पर सवाल उठाने वाले मीडिया की नजरें सम्पत्ति के इतने बडे साम्राज्य को क्यों नहीं देख पायी ? कहीं मीडिया ने जानबूझकर चमत्कार के इस गोरखधंधे की अनदेखी तो नहीं की ! अथवा छद्म पंथ निरपेक्षता की प्रवृत्ति मीडिया पर भी हावी हो गयी है, जो बहुसंख्यकों के मानबिंदुओं को ठेस पहुंचाने को ही पंथनिरपेक्षता का पर्याय मानती है। या अन्य पंथों के चमत्कारी मठाधीशों का मीडिया प्रबंधन हिन्दू बाबाओं से बेहतर है, जिसके कारण उनसे जुड़ी नकारात्मक बातें मीडिया में नहीं आ पाती। यही प्रश्न उमा भारती ने मीडिया के सामने अन्य शब्दों में उठाए थे। उन्होंने कहा था कि हिन्दुओं को प्रयोग की वस्तु अथवा 'गिनी पिग्स' मत बनाइए।

चर्च के मतांतरण अभियान के परिप्रेक्ष्य में भारतीय मीडिया की भूमिका का विश्लेषण करने पर उमा के प्रश्नों के उत्तर आसानी से प्राप्त किए जा सकते हैं। 5,6,7 नवम्बर 1999 अपनी भारत यात्रा के दौरान पोप जॉन पॉल द्वितीय ने दिल्ली में 'एक्लेशिया इन एशिया' नामक एक दस्तावेज जारी किया था। एशिया के बिशप सम्मेलन में जारी किए गए इस दस्तावेज में तीसरी सहस्राब्दी में चर्च के उद्देश्य, उसकी भावी रणनीति पर पर प्रकाश डाला गया है। इसमें कहा गया है कि तीसरी सहस्राब्दी एशिया में 'आस्था की फसल' काटने का समय है और चर्च को ईश्वर द्वारा सौंपा गया काम तब तक पूरा नहीं होगा जब तक प्रत्येक व्यक्ति ईसाई न बन जाए।

'एक्लेशिया इन एशिया' में मतांतरण अभियान के लिए मीडिया का उपयोग करने की बात स्पष्ट रुप से कही गयी है। दस्तावेज कहता है कि मतांतरण के लिए भारत के प्रत्येक प्रदेश में मीडिया कार्यालय बनाए जाने चाहिए। यह दस्तावेज कैथोलिक स्कूलों में मीडिया प्रशिक्षण के जरिए ऐसे पत्रकारों को तैयार करने की भी बात कहता है जो मतांतरण के प्रति सहानुभूति रखते हों।

मतांतरण अभियान में मीडिया की उपयोग करना चर्च की व्यापक रणनीति का एक हिस्सा है। सूचना प्रवाह को अपने अनुकूल बनाए रखने के लिए चर्च मीडिया शिक्षा से लेकर मीडिया चैनलों तक में व्यापक पूंजी निवेश करता है। चर्च का यह पूंजी निवेश मीडिया की अंतर्वस्तु को प्रभावित करता है। भारत में भी कई चैनलों के लिए कैथोलिक चर्च ने व्यापक पूंजी निवेश किया है। अब उन चैनलों पर चर्च के खिलाफ खबरें तो आ नही सकती। उनके निशाने पर तो हिंदू संत ही होंगे।

लेकिन अब भारत में चर्च पोषित खबरिया चैनलों का एकाधिकार टूट रहा है। कुछ ऐसे स्वतंत्र खबरिया चैनल स्थापित हो चुके हैं, जिनके लिए पांथिक सीमाएं कोई महत्व नही रखती। उनके लिए दर्शक और टीआरपी ही सबकुछ है। ऐसे चैनल चर्च के नियमों के बजाय बाजार और कुछ हद तक पत्रकारिता के नियमों से संचालित होते हैं।

उमा के सवाल से मीडिया में मचा बवाल चर्च के इशारे पर नर्तन करने वाले पत्रकारों और चर्च पोषित मीडिया घरानों के लिए यह एक अशुभ संकेत है। लेकिन भारतीय परिदृश्य में यह एक शुभ घटना है। यह घटना राजनीति और पत्रकारिता के अंतर्सम्बंधों के लिहाज से तो महत्वपूर्ण है ही। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण इसलिए है क्योंकि यह बताती है कि अब आकाशीय सूचनाएं अपनी जमीन से जुडने लगी हैं।

■

'खुद कमाओ, खुद खाओ' की नीति से शुरू हुआ पेड न्यूज का सिलसिला– हेमंत विश्नोई

एक ओर जहां मीडिया पर व्यावसायिक हितों की पूर्ति करने के आरोप लगाए जा रहे हैं तो दूसरी ओर सुप्रीम कोर्ट मीडिया पर लगाम लगाने की तैयारी में लगा हुआ है। मीडिया के इन्हीं सब मुद्दों पर वरिष्ठ पत्रकार हेमंत विश्नोई से बातचीत के कुछ अंश :

पत्रकारिता के क्षेत्र में आपका आगमन कैसे हुआ?

बी.ए. की पढ़ाई करने के दौरान मैं जयप्रकाश आंदोलन में सक्रिय हुआ। मेरी एम.ए. की परीक्षा के बाद देश में आपातकाल लग गया था। अरूण जेटली के जेल जाने के बाद विद्यार्थी परिषद की ओर से आंदोलन के संचालन की जिम्मेदारी मुझे मिली थी। मीसा के अंतर्गत 17–18 महीने मुझे जेल में रहना गया और 25 जनवरी 1977 को हम रिहा हुए। जेल में रहते हुए मैंने सोचा कि यदि हमें देश के लिए कुछ करना है तो पहले खुद को किसी पेशे में स्थापित करना चाहिए और बाद में राजनीति का रूख करना चाहिए। आपातकाल के बाद मैं पत्रकारिता में आ गया। पत्रकारिता में रहते हुए आप राजनीति में नहीं आ सकते किन्तु राजनेताओं को प्रभावित कर सकते हैं, यह सोच कर मैं इस क्षेत्र में आया। पत्रकारिता की शुरूआत मैंने हिन्दुस्थान समाचार से की जहां मैंने दो वर्ष कार्य किया। 'द ट्रिब्यून' में भी मैं दो वर्ष पत्रकार रहा। इसके बाद अक्टूबर 1983 में मैं नवभारत टाइम्स से जुड़ा जहां मैं जुलाई 2005 तक रहा।

पत्रकारिता के दौरान आपके कुछ रोचक अनुभव?

एक खबर की रिपोर्टिंग मैंने बड़े रोचक ढंग से की थी। दरअसल उत्तर प्रदेश और हरियाणा का विभाजन यमुना नदी से होता है और यह नदी अपना रास्ता बदलती रहती है। इस प्रकार नदी किनारे होने वाली खेती पुलिस वालों की जेब भरने का साधन है और इसको लेकर दोनों राज्यों की पुलिस के बीच तनाव चलता रहता है। एक दिन वहां पुलिस वालों के बीच गोली चली। मैं खबर के लिए गया तो उनसे पूछा कि गोली आधे घंटे चली तो वह कहने लगे कि हां चली। वो झूठ बोल नहीं पा रहे थे। अगले दिन इस खबर को 'द ट्रिब्यून' की पहले पृष्ठ की लीड खबर बनाया गया। उसी शाम मैं चंडीगढ़ चला गया और मुझे पता चला कि मुख्यमंत्री भजनलाल जी ने इस खबर का खंडन कर दिया। 'दी ट्रिब्यून' की ओर से मुझे खबर फॉलो करने के लिए विवादित क्षेत्र में भेज दिया गया। मैं थाना गया तो वहां कोई जवाब नहीं दे रहा था। हम नदी पार करके उत्तर प्रदेश के खुरजा थाने में गए तो एसएचओ भी टाल रहा था। इसके बाद हमने उन्हें कहा कि ''उन्होंने आपके खिलाफ एफआईआर दर्ज कर ली है। तुमने भी कुछ किया, नहीं तो तुम मारे जाओगे।'' वो मूछों पर तांव देकर कहने लगा कि ''हम भी कोई पीछे नहीं है, हमने पूरी एफआईआर दर्ज कर ली है।'' उस एफआईआर की प्रति लेकर हम चल पड़े। उसके बाद लौटकर फिर हम हरियाणा थाने में आए और उन्हें कहा कि ''तुम्हारे खिलाफ उन्होंने एफआईआर दर्ज कर ली है, तुमने भी कुछ किया है?'' तो उसने अपनी एफआईआर की प्रति दे दी। फिर हमने दोनों एफआईआर का ध्यान से अध्ययन किया और मुख्यमंत्री की बात का खंडन हो गया।

वर्तमान पत्रकारिता के दौर में आप क्या बदलाव देखते हैं?

पत्रकारिता की शुरूआत आदर्शवाद से प्रेरित होकर हुई थी। उस समय आर्थिक तंगी के कारण समाचारपत्रों की अपेक्षा पत्रिकाएं अधिक प्रकाशित होती थी। अपने अन्य उद्योगों को संरक्षण प्रदान करने के लिए पूंजीपतियों ने अखबार निकालना शुरू किया। उस दौरान जिन पत्रिकाओं में कोई बड़ा खुलासा होता था तो उसकी बिक्री बढ़ जाती थी और बाकी सबको भी वह खबर देने के लिए मजबूर होना पड़ता था। इसके बाद पत्रकारिता में पेड न्यूज हावी होने लगा। इसकी शुरूआत दिल्ली के एक अखबार से हुई। वहां लगभग 70 पत्रकारों को एक–एक हजार के वेतन पर रखा गया और यह वेतन भी उन्हें समय से नहीं मिलता था। इस प्रकार वहां 'खुद कमाओ, खुद खाओ' की प्रथा चल पड़ी। इस प्रकार वे संवाददाता खबरें छापने के पैसे लेते थे। प्रबंधन को खयाल आया कि यह पैसा क्यों न हमें विज्ञापन के रूप में मिले। किंतु विज्ञापन से उसकी विश्वसनीयता कम होती थी। इसीलिए उन्होंने चुनाव के दौरान विज्ञापन को ही खबर के रूप में छापना शुरू किया। स्थिति यह हो गई कि एक ही पेज पर एक ही

क्षेत्र के दोनों प्रत्याशियों के जीतने का दावा किया जा रहा था। इससे उस अखबार की विश्वसनीयता को धक्का लगा और चुनाव खत्म होते ही अखबार की प्रसार संख्या एकदम से गिर गई। लेकिन अन्य अखबारों ने इस प्रवृत्ति को अपना लिया।

आज मीडिया पर अंकुश लगाने की बातें की जा रही हैं। इससे आप कहां तक सहमत हैं?

मीडिया में कई बार सीमा पार करने वाली बाते भी आती हैं। खासतौर पर जो फिल्म और खेल पत्रकारिता है, इनमें तो यह मामले बहुत पहले से चल रहे हैं। पत्रकारिता में आने के बाद आपको बहुत सारी सूचनाएं मिलती है जिनके आधार पर आप खबर छाप सकते हैं या संबंधित व्यक्ति को आप ब्लैकमेल कर सकते हैं। इसमें खबर छापना आपका न्यायोचित अधिकार है लेकिन खबर के आधार पर ब्लैकमेल करके पैसे लेना, सरकार से सुविधाएं ले लेना प्रतिबंधित होना चाहिए। इसके लिए पत्रकार संगठनों को आचार संहिता बनानी चाहिए। लेकिन सुप्रीम कोर्ट आचार संहिताएं बनाएं, यह मुझे ठीक नहीं लगता, क्योंकि सुप्रीम कोर्ट ने अपने यहां की रिपोर्टिंग पर भी प्रतिबंध लगा रखा है। जबकि सुप्रीम कोर्ट की रिपोर्टिंग पर प्रतिबंध के लिए राष्ट्रपति से स्वीकृति होनी चाहिए, लेकिन ऐसा नहीं है। इस मामले को हमने जब प्रेस काउंसिल में उठाया तो इस पर चर्चा तक नहीं हुई क्योंकि वहां भी सुप्रीम कोर्ट के पूर्व न्यायाधीश बैठे थे। यह स्थिति सारी व्यवस्था में गड़बड़ कर सकती है क्योंकि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता सबको है इसलिए सुप्रीम कोर्ट के निर्णयों पर टिप्पणी करना सबकी अपनी सोच हो सकती है। सुप्रीम कोर्ट की रिपोर्टिंग के लिए कानून का जानकार होना पहले से तय करना भी ठीक नहीं है।

न्यायालय की रिपोर्टिंग को लेकर अभी जो बातें हो रही हैं उसको मद्देनजर रखते हुए न्यायालय की रिपोर्टिंग किस तरह की होनी चाहिए?

न्यायालय की रिपोर्टिंग के लिए नीचे से चलें और अखबारों में क्या छपता है, इसे देखें। दिल्ली के अंदर जो भी अपराध होता है उसका 80 प्रतिशत अखबारों में आ जाता है। इसके लिए दिल्ली पुलिस ने व्यवस्था बनाई है जिसके तहत सभी थाने कंट्रोल रूम में अपराधों की सूचनाएं देते हैं जहां से उपयुक्त खबरें पत्रकारों को दी जाती है। लेकिन न्यायालयों की बात करें तो इसकी खबरें अखबारों तक पहुंचाने के लिए कोई व्यवस्था नहीं है। इससे समाज में ये संदेश जा रहा है कि अपराध बढ़ रहे हैं लेकिन सजा नहीं मिल रही। अतः अखबारों में जितनी प्रमुखता के साथ अपराध की खबर छापी जाती है, उतनी प्रमुखता के साथ उसके न्याय की भी जानी चाहिए। रिपोर्टिंग के मामले में न्यायाधीशों ने अपने को 'ओवरप्रोटेक्टेड' रखने की कोशिश की है। सुप्रीम कोर्ट ने कई बार कहा है कि सुप्रीम कोर्ट, हाई कोर्ट या नीचे की कोर्ट में सुनवाई जनता के बीच होनी चाहिए और अगर न्यायालय कक्ष छोटा पड़ता है तो उसको दूरदर्शन के जरिए प्रसारित किया जाना चाहिए। यदि न्यायाधीश को अपना चेहरा दिखाने में आपत्ति है तो उसका ऑडियो ही प्रसारित होना चाहिए। लेकिन न्यायाधीश अपनी गलती के पकड़े जाने से बचने के लिए इस तरह की व्यवस्था से परहेज करते हैं।

भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में न्यू मीडिया पर सरकार की ओर से लगाम लगाया जाना कहां तक सही है?

न्यू मीडिया का मामला प्रसारण का नहीं है। हालांकि इसमें कई ऐसी चीजे है जिसे हर कोई आदमी खोलकर देख सकता है। कुछ ऐसे मुद्दे भी हैं जिस पर चार लोग ही बात कर सकते हैं। यदि पहले भी समाज में चार लोग घर के अंदर बैठकर बात करते थे तो उस पर संविधान में रोक नहीं लगाई जाती थी। लेकिन सार्वजनिक प्रसारण यदि सही नहीं है तो उस पर रोक लगानी चाहिए। फिल्मों में दिखाई जाने वाली सामग्री सेंसर बोर्ड से पास होती है। उसमें आपत्तिजनक किस्सों पर रोक लगाई जाती है। लेकिन इंटरनेट पर ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है। आज तीसरी क्लास के बच्चों तक इंटरनेट की पहुंच है और कई बार आपत्तिजनक साइट खुल जाती है। इस प्रकार अश्लीलता को रोकने के कोई प्रयास नहीं किए गए हैं और दुर्भाग्य से इसके विरोध में कोई आवाज नहीं उठ रही है।

सरकार साइटों पर से वो कंटेंट भी हटा रही है जो सरकार के खिलाफ जाते हैं? उस पर आपकी क्या राय है?

यदि सरकार कोई कंटेंट दबाव बनाकर हटवा भी देती है तो कोई

दूसरा व्यक्ति उसे डाल देता है। वहां से हटकर वह मैगजीन में भी छप सकता है। इसमें भी ऐसी जानकारी ही सार्वजनिक करनी चाहिए जिसके संबंध में तथ्य व आंकड़ें आपके पास हो। बिना आंकड़ों और तथ्यों के कोई बात सार्वजनिक नहीं करनी चाहिए। व्यक्तिगत तौर पर आप बेशक उस बारे में बात कर सकते हैं। इसलिए यदि उनके बारे में आपके पास तथ्य है तो उसे मुख्यधारा की मीडिया में लाया जा सकता है।

प्रेस काउंसिल के अध्यक्ष मार्कण्डेय काटजू द्वारा बार–बार मीडिया की आलोचना किए जाने को आप किस संदर्भ में देखते हैं? क्या वाकई मीडिया का इतना पतन हो चुका है या फिर इसके पीछे कुछ और कारण है?

जो काटजू साहब कह रहे हैं और जो मीडिया में रिपोर्टिंग हो रही है इन दोनों में फर्क हो सकता है। जैसा कि अभी रामदेव जी ने कहा कि कुछ सांसद हत्यारे हैं और कुछ सांसद अच्छे हैं। इसका ये मतलब नहीं कि सभी सांसद हत्यारे हैं। ऐसे ही काटजू जी की बातों को जब तक मैं मूल रूप में नहीं देख लेता, मेरे लिए आलोचना करना काफी मुश्किल है।

जनआंदोलनों को लोकप्रिय करने में मीडिया का क्या योगदान है?

निश्चित तौर पर मीडिया से बात आगे बढ़ती है। यदि आपका फोन काम कर रहा है तो आप चार लोगों को बता सकते हैं। फोन काम न करने की स्थिति में घर–घर जाकर आपको बताना पड़ेगा। तो निशचित तौर पर हवा को आंधी बनाने का काम मीडिया करता है।

मीडिया पर राजनीति व व्यावसायिक हितों की पूर्ति करने हेतु अपनी राष्ट्रीय जिम्मेदारी से दूर होने के आरोप लगाए जाते हैं। क्या आप इससे सहमत है?

निश्चित तौर पर। फर्क इतना है कि एक व्यक्ति का रूझान सिर्फ एक तरफ है। हम दोनों पत्रकार है और मेरी लड़ाई व आपकी लड़ाई अलग–अलग स्तरों पर चलेगी। एक को आप समर्थन करेंगे तो दूसरे को मैं। वनस्पति घी वाला अखबार चलाने लगता है तो उसके खिलाफ बेशक उस अखबार में न छपे, किन्तु दूसरे अखबार में तो छप सकता है। दोनों दोस्ती कर लेंगे तो तीसरे अखबार में या किसी पत्रिका में छप जाएगा और एक बार छपने के बाद उसे रोक पाना किसी के भी बस में नहीं होता।

मीडिया में आज राष्ट्रीय मुद्दों के प्रसारण के लिए दृष्टिकोण बनाए जाने में 'मीडिया मैनेज्ड' का कितना योगदान है?

यह बड़ा खतरनाक मामला है कि हम पैसे कि लिए विदेशियों पर निर्भर कर रहे हैं। भारतीय मीडिया में विदेशी पैसा आने से विदेशों एवं व्यापारियों के हितों को आगे बढ़ाया जा रहा है। पैसों के बल पर भारत की सस्ती चीजों की अवहेलना की जा रही है और स्वास्थ्य को हानि पहुंचाने वाली चीजों को बढ़ावा मिल रहा है। पहलवान जब नमक से दांत साफ करता था तो हैरानी जताई जाती थी और आज दावा किया जा रहा है कि हमारे टूथपेस्ट में नमक है। इसी प्रकार एक समय चलाया गया कि बच्चे को मां अपना दूध न पिलाएं। इसके बाद जब मामले की असलियत सामने आई तो पता चला कि विपरीत माहौल बनाने की तैयारी की जा रही है।

मीडिया में दलाली की जड़े किस सीमा तक व्याप्त हो चुकी है? क्या उन्हें समाप्त करना संभव है? यदि हां तो कैसे?

मुझे नहीं लगता कि यह संभव है, लेकिन मीडिया को जरूरत से ज्यादा तवज्जो देना ठीक नहीं है। एक बड़े अखबार में मैंने देखा कि चुनाव के दौरान जीतने वाले के बारे में तो जानकारी इकट्ठी कर रखी थी, साथ ही एक दल इस बात की जांच के लिए था कि जीतने वालों के बच्चे कहां नौकरी कर रहे हैं और उन्हें कहां नौकरी दी जा सकती है। ये बात आज की नहीं 60 के दशक की है। इसके माध्यम से सरकार को प्रभावित करना और अपने व्यावसायिक हितों को साधना उनका काम था। लेकिन अब प्रतिस्पर्धा के चलते कहीं न कहीं सही बात आ ही जाती है।

प्रिंट एवं इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में से कौन पत्रकारीय मूल्यों को बेहतर तरीके से निभा पा रहा है?

इलैक्ट्रॉनिक मीडिया में तो कोई मूल्य ही नहीं है। प्रिंट मीडिया में भी जो मापदण्ड थे, उनमें शिथिलता आ रही है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में तो इन मापदण्डों पर ध्यान बहुत कम दिया जा रहा है। चूंकि यहां तत्काल प्रसारण करना होता है तो ध्यान देने की ज्यादा आवश्यकता है, लेकिन वहां पर इस बात पर अमल नहीं किया जाता है।

क्या पत्रकारिता में कोई मानक वेजबोर्ड होना चाहिए?

मीडिया मालिक बुद्धिजीवी काम पर अधिक खर्च नहीं करना चाहते और सस्ते से सस्ता व्यक्ति लाने का प्रयास करते हैं जिसके कारण उनका बौद्धिक स्तर कम हो जाता है। इसीलिए इस स्तर को बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि मीडिया में पारिश्रमिक संतुलित हो और इसके लिए वेजबोर्ड बनने चाहिए।

आम आदमी की नजरों में पत्रकारिता का जो स्तर गिर गया है उसे वापिस बनाने के लिए क्या प्रयास किए जाने चाहिए?

अखबारों की विश्वसनीयता बहुत नीचे आई है और इसको उठाना आवश्यक है। पहले न्यूज और व्यूज को अलग रखा जाता था और फिर इन दोनों को मिश्रित करके चलाने का प्रयास हुआ, यह गलत था। पत्रकार को समाचार देते समय बिना अपना मत व्यक्त किए तथ्यों को ही प्रस्तुत करना चाहिए। दूसरी ओर इलैक्ट्रॉनिक मीडिया में तो 'एब्यूजिंग लैंग्वेज' का बहुत प्रचलन बढ़ गया है। इसे सुधारने के लिए प्रेस काउंसिल की ओर से पहल होनी चाहिए और इसे राज्य स्तर पर भी लागू करना चाहिए। वहां बुद्धिजीवियों को बिठाया जाना चाहिए और किसी भी प्रकार की शिकायतों का निपटारा किया जाना चाहिए।

प्रस्तुति– नेहा जैन

पत्रकारिता और हिंदी की बिगड़ती स्थिति

अवनीश सिंह

हिंदी पत्रकारिता का यह सौभाग्य रहा कि समय और समाज के प्रति जागरूक लोग एक निश्चित लक्ष्य के लिए पत्रकारिता से जुड़े। ये लक्ष्य थे राष्ट्रीयता, सांस्कृतिक उत्थान और लोकजागरण। तब पत्रकारिता एक मिशन थी, राष्ट्रीय महत्व के उद्देश्य पत्रकारिता की कसौटी थे और पत्रकार निडरता व्यक्तित्व लेकर खुद भी आगे बढ़ता था और दूसरों को प्रेरित करता था। वास्तव में हिन्दी पत्रकारिता की कहानी भारतीय राष्ट्रीयता की कहानी है। हिंदी पत्रकारिता का प्रश्न राष्ट्रभाषा और खड़ी बोली के विकास से भी संबंधित रहा है। हिंदी भाषा के विकास की पूरी प्रक्रिया हिंदी पत्रकारिता की यात्रा को देखकर जानी जा सकती है। इस विकास में भाषा के प्रति जागरूक पत्रकारों का योगदान हिंदी को मिलता रहा है। इनमें से कुछ पहले साहित्यकार थे और बाद में पत्रकार बने, तो कुछ ने पत्रकारिता से शुरू करके साहित्य जगत में अपना स्थान बनाया।

पत्रकारिता का साहित्यिक स्वरूप

साहित्य और पत्रकारिता के बीच एक अटूट रिश्ता रहा है। एक जमाना वह था जब इन दोनों को एक–दूसरे का पर्याय समझा जाता था। ज्यादातर पत्रकार साहित्यकार थे और ज्यादातर साहित्यकार पत्रकार। पत्रकारिता में प्रवेश की पहली शर्त ही यह हुआ करती थी कि उसकी देहरी में कदम रखने वाले व्यक्ति का रुझान साहित्य की ओर हो, लेकिन पिछले दो दशकों से इस रिश्ते में एक दरार आ गई है जो लगातार चौड़ी हो रही है। इसलिए आज की पत्रकारिता पर यह आरोप लग रहा है कि वह साहित्य की उपेक्षा कर रही है।

आजादी से पहले हिंदी पत्रकारिता के तीन चेहरे थे। पहला चेहरा था, आजादी की लड़ाई को समर्पित पत्रकारिता, दूसरा चेहरा था साहित्यिक उत्थान को समर्पित पत्रकारिता और तीसरा चेहरा था समाज सुधार करने वाली पत्रकारिता का था। कहना न होगा कि इन तीनों को आजादी का महाभाव जोड़ता था। इसलिए साहित्यिक पत्रकारिता भी यदि राजनीतिक विचारों से ओतप्रोत थी तो राजनीतिक पत्रकारिता में भी साहित्य की अंतःसलिला बहा करती थी।

पत्रकारिता में भाषा की चुनौती

हिन्दी पत्रकारिता के स्वतंत्र्येतर युग को देखा जाए तो इसने छह दशक से अधिक की अपनी यात्रा पूरी कर ली है। इस दौरान पत्रकारिता में कई उतार–चढ़ाव देखने को मिले। अखबार और पाठक दोनों ने ग्लोवलाइजेशन का मजा चखा। प्रसारण माध्यमों में हुई तब्दीली साफ दिखी। पिछले दशक में जन्में टेलीवीजन चैनलों की गिनती करना असंभव है। माना जा रहा है कि नये समाचार माध्यमों के बढ़ने से मीडिया में भाषा को लेकर नयी–नयी चुनौतियां सामने आ रही हैं। ऐसे में हिन्दी भाषा के अस्तित्व पर मंडरा रहे संकट से किस प्रकार उबरा जाए यह एक विचारणीय प्रश्न बनता जा रहा है। समाचार माध्यमों की भाषा किस तरह की हो, यह लंबे समय से बहस का मुद्दा बना हुआ है। हिन्दी को लेकर सोचने वाले तरह–तरह के सवाल उठाते हैं, जैसे कि क्या ये हिन्दी के लिए संकट की घड़ी है, क्या हिन्दी संक्रमण के काल से गुजर रही है, क्या हिन्दी इन परिवर्तनों और प्रयोगों के बीच जीवित रह पाएगी, आदि आदि। छठे दशक से ही हिंदी में विभिन्न नए–नए क्षेत्रों की पत्रकारिता का उभार दिखाई देने लगा। इसके लिए हिंदी को नई शब्दावली और अभिव्यक्तियों की आवश्यकता पड़ी। वास्तव में किसी भी भाषा से बाह्यजगत की संकल्पनाओं को अपनी भाषा में ले आना और फिर उन्हें स्थापित कर लोकप्रिय बनाना आसान काम नहीं है लेकिन पत्रकारिता हमेशा से इस कठिन कार्य को अपनी पूरी दक्षता और दूरदृष्टि से साधती रही है।

पत्रकारिता में नये प्रयोग

समाचार माध्यमों में हिन्दी के साथ जिस तरह से आये दिन नये–नये प्रयोग किए जा रहे हैं उससे तो यही लगता है कि अब हमारी हिन्दी दूसरी भाषाओं की गोद में जा बैठी है। सड़क से लेकर संसद तक के लोगों को ध्यान में रखकर काम कर रही मीडिया इन चुनौतियों से कैसे निपटे यह एक विचारणीय प्रश्न है। हिन्दी प्रसारण की भाषा संस्कृत के नजदीक हो या उर्दू के या फिर उसका रोमांस अंग्रेजी के साथ हो। वहीं दूसरी तरफ मीडिया की चिंता यह भी है कि श्रोताओं और दर्शकों की मनःस्थिति को जाने–समझे बिना किस तरह प्रसारण या प्रकाशन करे। इन सबके बीच यह भी विषय सामने आता है कि क्या हिन्दी इतनी सक्षम है कि भारतीय समाज इसे फलते–फूलते देखना चाहता है, अगर चाहता भी है तो क्या शहरों की अंग्रेजीपरस्त शासन व्यवस्था इसे पनपने देगी।

औद्योगिक दौर में पत्रकारिता

पत्रकारिता पर यह भी आरोप है कि उसका स्वरूप पहले की तरह स्पष्ट नहीं रह गया है। उसके मकसद को लेकर सवाल खड़े होने लगे हैं। उसमें अनेक स्तरों पर बिखराव दिख रहा है तो कई स्तरों पर अराजकता भी लक्षित हो रही है। इसकी सबसे बड़ी वजह शायद यह है कि हाल के वर्षो में मीडिया का अभूतपूर्व विस्तार हुआ है। आज वह केवल एक मिशन नहीं रह गया है, वह एक बड़े प्रोफेशन, बल्कि उद्योग में तब्दील हो चुका है। फिलहाल वह 10.3 अरब डॉलर का उद्योग है तो 2015 में वह 25 अरब डालर यानी सवा लाख करोड़ से अधिक का हो जाएगा। हाल की एक रिपोर्ट के अनुसार देश में 600 से अधिक टीवी चैनल, 10 करोड़ पे–चैनल देखने वाले परिवार और 70,000 अखबार हैं। यहां हर साल ।,000 से अधिक फिल्में बनती हैं। जाहिर है, इतने बड़े क्षेत्र को संभालना इतना आसान नहीं रह गया है। दुर्भाग्य यह है कि इसके लिए कोई सुविचारित नीति भी नहीं है। ■

कर्तव्य को समर्पित थे दुर्गा प्रसाद मिश्र

सूर्यप्रकाश

हिंदी भाषा के विकास के साथ ही हिंदी पत्रकारिता का भी विकास हुआ है। कह सकते हैं कि हिंदी भाषा को परिष्कृत करने और आम लोगों तक पहुंचाने में हिंदी पत्रकारिता की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। हिंदी भाषा ने राष्ट्रीय एकता को मजबूत करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है एवं उसके वाहक बने हैं हिंदी के समाचार पत्र।

हिंदी के प्रथम समाचार पत्र 'उदन्त मार्तण्ड' की शुरूआत भारत की भाषा में भारत के हितों की बात करने के लिए हुई थी। 'उदन्त मार्तण्ड' के इस उददेश्य को आगे आने वाले समाचार पत्रों ने भी पूर्ण करने का प्रयास किया। हिंदी पत्रकारिता की शुरूआत 19वीं शताब्दी में हुई थी जब देश परतंत्र था। यही कारण था की भारत को स्वराज्य दिलाना एवं मातृभूमि के गौरव को पुनः हासिल करना ही हिंदी पत्रकारिता का उद्देश्य था।

देशी संपादकों, सावधान। कहीं जेल का नाम सुनकर कर्तव्यविमूढ़ मत हो जाना। यदि धर्म की रक्षा करते हुए, यदि गवर्नमेंट को सत्परामर्श देते हुए जेल जाना पड़े तो क्या चिंता है।

हिंदी पत्रकारिता को क्रांति एवं राष्ट्रहित के मार्ग पर ले जाने के लिए अनेकों पत्रकारों ने अहोरात्र संघर्ष किया। ऐसे ही पत्रकार थे, पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र। 19वीं सदी की हिंदी पत्रका. रिता में दुर्गाप्रसाद मिश्र का महत्वपूर्ण योगदान माना जाता है। दुर्गाप्रसाद मिश्र का जन्म 31 अक्टूबर, 1860 को जम्मू–कश्मीर के सांवा नगर में हुआ था। उन्होंने काशी में संस्कृत एवं कलकत्ता के नार्मल स्कूल से अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त की।

दुर्गाप्रसाद ने कलकत्ता को ही अपनी कर्मभूमि बनाया। उन्होंने अपनी पत्रकारिता की शुरूआत काशी से निकलने वाली साहित्यिक पत्रिका 'कविवचनसुधा' के संवाददाता के रूप में की। इसके पश्चात वे 17 मई 1878 को कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले 'भारत–मित्र' से जुड़े जिसका संपादन पं. छोटूलाल मिश्र करते थे। 'भारत–मिश्र' के प्रबंध संपादक की जिम्मेदारी पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र के पास ही थी। लगभग एक वर्ष के पश्चात वे 'भारत–मित्र' से अलग हो गए, किंतु उनकी पत्रकार जीवन की यात्रा के कई पड़ाव अभी बाकी ही थे। 13 अप्रैल, 1879 को उन्होंने पं. सदानंद मिश्र के सहयोग से 'सारसुधानिधि' निकाला। यह पत्र उन्नीसवीं सदी के अत्यंत ओजस्वी पत्रों में से एक था। राष्ट्र में स्वराज्य की वापसी एवं समाज का पुनर्जागरण ही 'सारसुधानिधि' का मूल स्वर था। 'सारसुधानिधि' के संपादक संदानंद मिश्र की यह संपादकीय टिप्पणी पत्र के उद्देश्य को बताने के लिए पर्याप्त जान पड़ती है–

''भारत के दुर्भाग्य को अपना दुर्भाग्य और भारत के सौभाग्य को अपना सौभाग्य समझो। नही ंतो भारत का दुर्भाग्य कदापि दूर नहीं होगा।'' (सारसुधानिधि, वर्ष 2, अंक 25)

'सारसुधानिधि' में सक्रिय सहयोग देने के पश्चात सन 1880 में पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र ने अपने स्वयं के पत्र 'उचित वक्ता' का प्रकाशन प्रारंभ किया। यह पत्र अपने नाम के अनुरूप उचित विषय ही उठाता था। श्री मिश्र ने इस पत्र के माध्यम से जनचेतना को जाग्रत करने का बीड़ा उठाया था। ब्रिटेन की छत्रछाया में भारत की कथित प्रगति को उजागर करते हुए उन्होंने भारतीयों को दासता से मुक्त होने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने अपनी संपादकीय टिप्पणी में लिखा–

''पहली उन्नति और अबकी उन्नति में अंतर इतना ही है कि वह स्वाधीन भारत की उन्नति थी। उस उन्नति में उन्नतिमना स्वाधीनता प्रिय भारत संतानों का गौरव था और यह पराधीन भारत की उन्नति हो रही है। इस उन्नति में पदावनत हम भारत कुल तिलकों की अगौरव के सहित गर्दन नीची होती जाती है''

पत्रकार का कर्तव्य सत्य के लिए असत्य से लड़ना ही होता है। बशर्ते उसके लिए उसे कोई कीमत ही क्यों न चुकानी पड़े। सरकारों ने समय–समय पर पत्रकारिता पर शिकंजा कसते हुए जनसरोकार से जुड़े मुददे अथवा आंदोलनों को दबाने का प्रयास किया है। चाहे वह अंग्रेजी सरकार रही हो अथवा स्वतंत्र भारत में आपातकाल का दौर। पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र ऐसे ही पत्रकारों में से थे जो हर वक्त अपने कर्तव्य मार्ग पर डटे रहे। वे डटे ही नहीं बल्कि अंग्रेजी हूकूमत के विरूद्ध लड़े भी। अपने कर्तव्य पथ पर अडिग रहने का आह्वान करते हुए उन्होंने मई, 1883 के अपने संपादकीय में लिखा–

''देशी संपादकों, सावधान। कहीं जेल का नाम सुनकर कर्तव्यविमूढ़ मत हो जाना। यदि धर्म की रक्षा करते हुए, यदि गवर्नमेंट को सत्परामर्श देते हुए जेल जाना पड़े तो क्या चिंता है। इसमें मान हानि नहीं होती है। हाकिमों के जिन अन्यायपूर्ण आचरणों से गवर्नमेंट पर सर्वसाधारण की अश्रद्धा हो सकती है, उसका यथार्थ प्रतिवाद करने जेल में तो क्या, द्वीपांतरित भी होना पड़े तो क्या बड़ी बात है? क्या इस सामान्य विभीषिका से हमलोग अपना कर्तव्य छोड़ बैठें?''

श्री दुर्गाप्रसाद मिश्र भारतीय पत्रकारों के अग्रणी योद्धा थे। उनके

तेजस्वी पत्रों ने लोगों में चेतना का संचार किया। यद्यपि दुर्गाप्रसाद जी ने ऐसे समय में पत्रकारिता की थी जब हिंदी का पाठक थी हिंदी की उन्नति के प्रति उदासीन था। ऐसे समय में पत्रकारिता करना एवं सरकारी सहायता के बिना पत्रों को चलाने का जोखिम लेना आसान नहीं था। हिंदी पाठकों की उदासीनता से व्यथित होकर ही 'सारसुधानिधि' के संपादक ने 5 जनवरी, 1880 के अंक में लिखा था–

''जैसी अवस्था हिंदी भाषा की है, इस पर ऐसी आशा नहीं होती कि लोग शौक से हिंदी भाषा के अनुरागी होकर हिंदी पत्रों की सहायता की दृष्टि से लिया करें और यथासमय दाम दिया करें कि जिसमें पत्र संपादकों को केवल देशोपकार की चिंता के दूसरी चिंता न रहे। देशवासियों को समाचार पत्र का प्रयोजन, उसका उददेश्य और उपयोगिता हृदयंगम नहीं हुई है''

पं. दुर्गा प्रसाद मिश्र की पत्रकारिता में समझौतों के लिए कोई स्थान नहीं था। यही कारण था कि उनकी लेखनी पूर्णतया निष्पक्ष थी। उन्होंने 'उचित वक्ता' के माध्यम से तत्कालीन समय के उचित प्रश्नों को उठाया था। 'उचित वक्ता' में मिश्र जी के लेखन के बारे में पं. अम्बिका प्रसाद वाजपेयी ने कहा था–

''यह उनका अपना पत्र था। इसमें किसी का साझा न था। प्रायः दो वर्षों में इन्हें लिखने–पढ़ने और पत्र संपादन करने का अच्छा अनुभव हो गया था, इसलिए 'उचित वक्ता' बड़ा तेजस्वी पत्र हुआ। इसमें लिखने–पढ़ने में कोई मिश्र जी का हाथ पकड़ने वाला न था, इसलिए वे पूर्ण स्वतंत्रता से लिखते थे।''

पत्रकारिता मिशनरी कार्य है, मिशन की तरह जुटना पड़ता है। पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र भी पत्रकारिता के कार्य में मिशनरी भाव से ही जुटे रहे। उनका पत्रकार जीवन प्रतिकूल परिस्थितियों से संघर्ष में ही बीता। ''उचित वक्ता'' पत्र को उन्होंने बड़े प्रयासों से चलाया था। जिसकी उन्हें कीमत भी चुकानी पड़ी, किंतु वे कभी निराश नहीं हुए। शायद बाधाएं ही उनकी प्रेरणा थीं। जिस राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने के लिए 'उचित वक्ता' का जन्म हुआ था उसे जीवित रखने के लिए पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र को अनेक भूमिकाओं में उतरना पड़ता था। पत्र की सामग्री तैयार करने, छापने, ग्राहकों तक पहुचाने एवं उन्हें पढ़कर सुनाने–समझाने तक का कार्य उन्हें स्वयं ही करना पड़ता था।

'उचित वक्ता' के संपादन में उनको आर्थिक हानि भी झेलनी पड़ी थी। इस संबंध में पं. अम्बिका प्रसाद वाजपेयी ने लिखा है– ''दुर्गा प्रसाद जी ने घर का धान पुआल में मिलाया।''

अंग्रेजी सरकार की गलत नीतियों की आलोचना एवं भारत का पुनर्जागरण करना ही तत्कालीन समाचार पत्रों का मूल उददेश्य था। उनका यह प्रयास स्वातंत्र्य देवी के दर्शन के लिए था। भारत आजाद हो और भारत पर स्वकीय जनों का शासन आए यही उस समय के पत्रकारों एवं संपादकों का लक्ष्य था, जिसके लिए उनकी पत्रकारिता सदैव समर्पित रहती थी। यद्यपि पत्रकारों को अपने इस उददेश्य के लिए विभिन्न यातनाओं एवं कष्टों को झेलना पड़ा था। तत्कालीन समय के संपादकों एवं पत्रकारों के कष्टों के बारे में उचित वक्ता के 23 दिसंबर, 1882 के अंक में दुर्गा प्रसाद मिश्र ने लिखा था–

''हम भारतीय पत्र संपादकों की जैसी हीन और मलीन दशा है वह किसी से अविदित नहीं है। ये लोग सदा अपने देश की भलाई के लिए उद्यत रहते हैं उसी से सदैव गवर्नमेण्ट के समीप राजभक्ति विहीन अधम गिने जाते हैं। क्षुद्र हाकिमों से लगाकर उच्चतर चिरपतियों तक का इन पर आक्रोश बना रहता है।''

पत्रकारिता के उददेश्यों के लिए पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र सदैव प्रयत्नशील रहे। सारसुधानिधि, उचितवक्ता एवं भारतमित्र जैसे अपने समय के प्रतिष्ठित पत्रों में उन्होंने लेखन एवं संपादन किया। उनके पत्रों से लेखक के तौर पर भारतेंदु हरिशचन्द्र एवं दयानन्द सरस्वती जैसी महान विभूतियां भी जुड़ीं। हिंदी पत्रकारिता के अतिरिक्त उन्होंने बंगला के स्वर्णलता के आधार पर सरस्वती नामक नाटक भी लिखा। उन्होंने बिहार प्रांत के विद्यालयों के लिए पाठ्य पुस्तकें भी लिखीं। उनका जीवन शब्दों की आराधना के लिए ही समर्पित था। वे हिंदी के ऐसे पत्रकार रहे हैं जिन्हें हिंदी पत्रकारिता के जन्मदाताओं एवं प्रचारकों में शुमार किया जाता है।

पं. दुर्गाप्रसाद जी का निधन सन 1910 में हुआ। वे हिंदी पत्रकारिता को अपनी अमूल्य प्रेरणा देकर गए। जो आज भी हिंदी के पत्रकारों को हिंदी की सेवा एवं राष्ट्र जागरण के लिए पत्रकारिता करने का मार्गदर्शन देती हैं। दुर्गाप्रसाद मिश्र सरीखे पत्रकार का जीवन परिचय ही पत्रकारिता की वर्तमान पीढ़ी के लिए प्रेरणापुंज के समान है। ■

कानून के दायरे में मीडिया

पत्रकारिता आचार संहिता का उल्लंघन व पेड न्यूज के कारण केंद्र सरकार ने संसद सत्र में बताया कि भारतीय प्रेस परिषद (पीसीआई) के अध्यक्ष काटजू ने इलेक्ट्रानिक मीडिया को परिषद के दायरे में लाने का प्रस्ताव दिया है। हालांकि ये कदम उन्होंने खबरों की गुणवत्ता और मानक को बेहतर बनाने के लिए लिया है।

काटजू ने पीसीआई को अधिकार के रूप में खबरों पर आर्थिक दण्ड लगाने का प्रावधान की भी बात कही है। चूंकि इलैक्ट्रॉनिक मीडिया से संबंधित मामले 'केबल टेलीविजन नेटवर्क नियमन कानून, 1995' के तहत आते हैं। तथ्यों के अनुसार पिछले लगभग तीन वर्षों में मीडिया में पत्रकारिता आचार संहिता के उल्लंघन से संबंधित 1544 मामलों का समाधान किया गया है।

चोरी सूचनाओं की भी होती है...

वंदना शर्मा

आज न्यू मीडिया के रूप में हमारे सामने सोशल नेटवर्किंग साइट्स (फेसबुक, माइस्पेस, ट्विटर, ऑरकुट, फ्रेंडस्टर), विकिपीडिया, ब्लॉग और बहुत कुछ दिखाई देता है। हालांकि, इस डिजिटल दुनिया का कोई दायरा नहीं है।

नए ज़माने के इस मीडिया के बीच सूचनाओं में क्रिएटिविटी, शेयरिंग यानी ऑनलाइन लेन–देन और एक के बाद दूसरे क्लिक से होकर गुजरने में सूचनाओं और व्यक्ति की निजता की गोपनीयता यानी 'सोशल आइडेंटिटी' खत्म होती जा रही है। जिसकी जानकारी लोगों को नहीं होती। जिन टूल्स के प्रयोग से सोशल मीडिया का इस्तेमाल इतना आसान बना है उन टूल्स का उतनी ही आसानी के साथ उनका दुरूपयोग भी किया जा रहा है। सोशल नेटवर्किंग सा. इटों का इस्तेमाल करने वाले करोड़ों ला. गों की 'आइडेंटिटी थेफ्ट' का खतरा बना हुआ है।

सोशल नेटवर्किंग साइटों के उपयोग. कर्ताओं में हर उम्र वर्ग के लोग शामिल हैं। जो बेधड़क उसका इस्तेमाल कर रहे हैं। इसी वजह से देश में आज आईटी सिक्योरिटी एक चिंता का विषय बना हुआ है। जिसका एक हालिया उदाहरण अभिषेक मनु सिंघवी के रूप में सबके सामने आया। जिसे संभाल पाना भी मुश्किल दिख रहा था। आजकल किसी भी व्यक्ति के शौक, आदतें, पसंद–नापसंद और प्रोफेशनल अनुभवों के बारे में जानकारी लेना कोई मुश्किल भरा काम नहीं रह गया है।

सोशल नेटवर्किंग साइट्स के प्रोफाइल पेज पर कुछ उपयोगकर्ता बेवजह अपनी निजी जानकारी को सार्वजनिक कर देते है, जिनमें अपने घर का पता, जन्मतिथि, भाई–बहनों या रिश्तेदारों के नाम, फोन नम्बर, दोस्त, अपने निजी संबंध या उनसे जुड़ी फोटो न जाने क्या–क्या। डिजिटल दुनिया के ऐसे उपयोगकर्ताओं में सबसे बड़ी संख्या किशोरों और युवाओं की है जो खुद को ज्यादा से ज्यादा उजागर करने की जुगत में लगे रहते हैं। यही उन्हें एक मुसीबत में फंसा देने के लिए काफी होता है। ये जानकारियां जाने–अनजाने उन हाथों में पहुंच जाती हैं जो भविष्य में खतरा पैदा कर सकती हैं। इस तरह की व्यक्तिगत जानकारियों के डिजिटल दुनिया पर सार्वजनिक होने के बावजूद हर सोशल नेटवर्किंग साइट अपने उपयोगकर्ताओं को प्राइवेसी सेटिंग्स भी उपलब्ध कराती हैं। लेकिन इनका प्रयोग बहुत ही कम उपयोगकर्ता करते हैं। दरअसल, व्यक्ति उन सेटिंग्स को समझना फिर उनका इस्तेमाल करना जरूरी नहीं समझते हैं।

ऑनलाइन खरीदारी का मामला भी कुछ ऐसा ही है। जिससे एक खरीदार का जीवन तो आसान हुआ है किंतु, गोपनीयता और निजता का सबसे बड़ा खतरा इन्हीं खरीदारों के लिए पैदा हो गया है। कोई भी थर्ड पार्टी यानी अन्य व्यक्ति उपयोगकर्ता के कार्ड या उसके नम्बर तक आसानी से पहुंचकर हैक कर लेता है। जिसका पता तक नहीं चलता और लुटने वाला घर बैठे लुट जाता है।

हाल ही में, डिजिटल दुनिया से संबंधित खतरों के बारे मे जानकारी के लिए यूरो आरएसजीसी ने भारत समेत 19 देशों के इंटरनेट उपभोक्ताओं पर एक सर्वे किया। इस सर्वे के मुताबिक, डिजिटल क्रांति ने लोगों की निजता को लगभग खत्म–सा कर दिया है।

19 देशों के इन सभी लोगों की सबसे बड़ी चिंता ऑनलाइन सुरक्षा को लेकर थी। इनमें से 60 फीसदी लोगों का कहना था कि सोशल मीडिया पर निजी जानकारियां देना गलत है। बहुत से लोग ऐसे भी होते हैं जो साइट पर सार्वजनिक तौर पर सूचना देने के बाद पछताते हैं। क्योंकि जो भी व्यक्ति अपने प्रोफाइल पर कोई भी सूचना डालता है उसे और उन पर हुए कमेंट को निजी रखना चाहता है। पर, सच तो सह है कि जब डिजिटल दुनिया में कोई जानकारी एक बार प्रकाशित हो जाती है तो वह स्वतः सार्वजनिक भी हो जाती है।

यदि उपयोगकर्ता अपनी कोई सूचना या फोटो आदि को साइट पर डालकर उसे डिलीट कर भी देता है तो भी वो कहीं ना कहीं इंटरनेट के जाल में रह जाती है जिसकी जानकारी उपयोगकर्ता को भी नहीं होती। हाल ही में एक नाबालिग लड़की की फोटो को सोशल नेटवर्किंग साइट से चुराकर ग़लत इस्तेमाल करने का मामला सामने आया था। जिससे पुलिस भी काफी मशक्कत करने के बाद उस अपराधी तक पहुंच पाई। यह कोई पहला ऐसा वाक्या नहीं था जिसमें ऐसी बात सामने आई हो। इससे पहले भी ऐसे कई मामले सामने आए हैं।

वैसे तो, सोशल नेटवर्किंग साइट्स पर नकेल कसना कोई आसान काम नहीं है। फिर भी, इन साइटों को फिल्टर कर अपने गलत कंटेंट पर लगाम लगाने का मुददा तूल पकड़ रहा है। इस निजी जानकारी की चोरी से बचने के लिए एक यही रास्ता अपनाया जा सकता है कि सोशल नेटवर्किंग करते समय इसके उपयोगकर्ता अपनी कोई भी निजी बात शेयर न करें। साथ ही, अपनी कोई भावना ज़ाहिर न करें जिसे सार्वजनिक रूप में गलत तरीके से समझ लिया जाए।

अपने प्रोफाइल पर अपनी निजी जानकारियों का कम से कम ब्यौरा देना चाहिए।यदि कोई सूचना या निजी जानकारी दे भी रहे हैं तो सबसे पहले उस साइट और उसके टूल्स को अच्छी तरह से समझ लेना चाहिए। युवाओं को कोई भी सूचना देने से पहले ठीक से सोच लेना चाहिए कि यह आगे चलकर कोई मुसीबत न बन जाए। ■

सोशल नेटवर्किंग बनाम मुख्य धारा की मीडिया

मीडिया का उद्देश्य जनता को सूचना प्रदान करना व शिक्षित करना ह, किन्तु पिछले कुछ वर्षों से प्रिंट एवं इलैक्ट्रॉनिक मीडिया पर अपने इस उद्देश्य से पथ भ्रष्ट होने के आरोप लग रहे हैं। जबकि न्यू मीडिया के स्वतंत्र व दबावमुक्त होने के कारण आज इसकी लोकप्रियता बढ़ती जा रही है। क्या आपको लगता है कि सोशल नेटवर्किंग मुख्य धारा की मीडिया का विकल्प बन रहा है?

नहीं, ऐसा बिल्कुल नहीं है क्योंकि सोशल नेटवर्किंग साइट्स सिर्फ मनोरंजन का एक जरिया है जबकि खबरों को जनता तक पहुंचाने का काम तो इलैक्ट्रॉनिक व प्रिंट मीडिया ही करती है। सोशल नेटवर्किंग साइट्स जैसे फेसबुक, गूगल प्लस तो एक मंच है लोगों तक पहुंचने का, उनसे जुड़ने का और एकत्र होने का।

प्रियंका सरीन, हिन्दुस्तान

नहीं, सोशल नेटवर्किंग साइट्स मुख्य धारा मीडिया में कभी नहीं बन सकती। मीडिया का काम है लोगो को शिक्षित करना व तथ्यों से अवगत कराना जबकि न्यू मीडिया का काम है लोगों को जागरूक बनाना। सोशल नेटवर्किंग साइट्स जगह देती है जिससे लोग अपनी बात रख सकें व अपना पक्ष रख सकें।

विकास शर्मा, नव भारत टाइम्स

नहीं, सोशल मीडिया विकल्प नहीं बना लेकिन समांतर खड़ा है। समाचार पत्रों पर हम न तो अपनी प्रतिक्रिया दे सकते और न ही बातचीत कर सकते। सोशल नेटवर्किंग साइट्स पर हम संवाद स्थापित कर सकते हैं। आने वाले दिनों में सोशल मीडिया की लोकप्रियता बढ़ेगी।

चंदन कुमार, जागरणजोश.कॉम

पिछले कुछ समय से यह देखा जा रहा है कि सोशल मीडिया, मुख्यधारा के मीडिया और राजनीतिक पार्टियों का एजेंडा सेट कर रहा है। कई मामलों में यह देखा गया है कि सोशल मीडिया, मुख्यधारा के मीडिया से भी तेज और आगे है। उदाहरण के लिए हाल ही में कांग्रेस प्रवक्ता अभिषेक मनु सिंघवी से संबंधित एक विवादित सीडी सुर्खियों में आई। इस सीडी में सिंघवी एक महिला वकील के साथ आपत्तिजनक स्थिति में दिखाए गए थे। वे इस मामले को कोर्ट में ले गए और कोर्ट ने मुख्यधारा के मीडिया द्वारा इसके प्रसारण पर रोक लगा दी। लेकिन सोशल साइट्स पर यह सीडी सार्वजनिक हो गई और कुछ ही समय में दुनियाभर में फैल गई। चूंकि सोशल साइट्स मुख्यधारा के मीडिया में नहीं आती हैं इसलिए उन पर कोई कानून तोडने का भी कोई मामला नहीं बना। इन साइट्स पर सीडी सार्वजनिक होने के बाद सिंघवी ने अपने पदों से इस्तीफा दे दिया, और इस तरह से सोशल मीडिया ने वह कर दिखाया जो मुख्यधारा का मीडिया नहीं कर पाया।

जगत मोहन, घोषक

मीडिया अपने रास्ते से भटक रहा है। यदि यही सिलसिला जारी रहा तो निश्चित ही सोशल मीडिया मुख्य धारा की मीडिया बन जायेगी, लेकिन हम मुख्य धारा वाले पत्रकारों को ऐसा होने से रोकना है।

रजनीकांत, राष्ट्रीय सहारा

एक समय में मीडिया का काम सराहनीय था, वह छोटी–छोटी बातों को लोगों के सामने लाता था, लेकिन आज मीडिया कमाने का धंधा है और जहां तक सोशल नेटवर्किंग साइट्स व न्यू मीडिया की बात करें तो यहां सिर्फ हम उल्टे–सीधे कुतर्क करते हैं। तो सोशल नेटवर्किंग मुख्य धारा की मीडिया कभी नहीं बन सकती।

रजा कादरी, मुंसिफ टीवी

नहीं, सोशल नेटवर्किंग मुख्य धारा मीडिया में कभी नहीं बन सकती क्योंकि इंटरनेट का प्रचार प्रसार छोटी जगहों, गांवों में तो है ही नहीं, तो यह मुख्य धारा की मीडिया कैसे बन सकती है। दूसरा प्रिंट व इलैक्ट्रानिक मीडिया पर सरकार की नकेल रहती है जबकि सोशल नेटवर्किंग साइट्स पर ऐसा कुछ नहीं है।

अनुराग पाण्डेय, पीटीआई

आज के समय में पहले की तरह केवल अखबार, रेडियो और टीवी ही अभिव्यक्ति का साधन नहीं रह गए हैं। जब से सोशल साइट्स अस्तित्व में आई हैं तब से संचार माध्यमों तक जन–जन की पहुंच हो गई है। यही कारण है अब कोई भी व्यक्ति अपने विचारों को कुछ ही पलों में में सारी दुनिया में फैला सकता है। यह सब सोशल साइट्स की मदद से ही संभव हुआ है। यह बात सही है कि सोशल साइट्स ने आम आदमी को अभिव्यक्ति का मजबूत आधार दिया है लेकिन इसके कई सारे खतरे भी हैं। इसके माध्यम से अफवाहों को बहुत तेजी के साथ फैलाया जा सकता है। अगर इन साइट्स के माध्यम से अफवाह फैलती है तो उसे रोकना किसी भी सरकार के लिए मुश्किल साबित होगा। हालांकि कंटेंट को लेकर सरकारों और इन साइट्स के बीच बातचीत चल रही है लेकिन इस दिशा में अभी तक कोई ठोस पहल सामने नहीं आई है।

ममता रानी, स्वतंत्र पत्रकार

वेबमीडिया की बढ़ती संभावनाएं

पवन सिंह

सूचना और संचार क्रांति के दौर में आज प्रिंट और इलेक्ट्रानिक मीडिया के बीच वेब पत्रकारिता का चलन तेजी से बढ़ा है और अपनी पहचान बना ली है। अखबारों की तरह बेव पत्र और पत्रिकाओं का जाल, अंतरजाल पर पूरी तरह बिछ चुका है। छोटे–बड़े हर शहर से अमूमन बेव पत्रकारिता संचालित हो रही है। छोटे–बड़े सभी शहरों के प्रिंट व इलेक्ट्रानिक मीडिया भी वेब पर हैं। इस बात से अंदाजा लगाया जा सकता है कि भारत में थोड़े ही समय में इसने बड़ा मुकाम पा लिया है। हालांकि समर अभी शेष है। इसे और आगे जाना है।

आने वाला दिन सौ फीसदी वेबमीडिया का ही है। इसकी संभावाएं भी अपार है लेकिन जन आकांक्षाओं पर खरा उतरने के साथ ही मानवीय मूल्यों और अपनी सभ्यता–संस्कृति की थाती सहेजने की चुनौतियां भी कम नहीं होंगी। धीरूभाई अंबानी ने जब दुनिया करलो मुट्ठी में का स्लोगन दिया था तो मोबाईल के इस क्रांतिकारी युग की कल्पना भी नहीं की गई थी। आज मोबाईल फोन ने दुनिया को मुट्ठी के बजाए चुटकी में कर रखा है। अब सूचना ही नहीं तमाम अकल्पनीय सेवाएं हमारे दरवाजे पर दस्तक देती नजर आ रही हैं। ऐसे में मीडिया जगत की थाती को महज प्रिंट के दायरे में सीमित रख कर कैसे सोचा जा सकता है। वह भी ऐसे मौसम में जब लोगों की मानसिकता चट मगनी पट विवाह की और मोबाईल फोन की सेवाओं व संचार सेवा से जुड़ी कंपनियों ने राजा से लेकर रंक तक और शहर की गलियों से लेकर देहात की चट्टी तक इंटरनेट पहुंचा दिया हो। गांव के कोने में बैठा व्यक्ति जहां अखबार सुलभ नहीं है वहां भी लोग मोबाईल पर समाचार देख रहे हैं। ऐसे में यह कैसे सोचा जा सकता है कि लोग किसी घटना अथवा देश–दुनियां के ताजातरीन मुद्दों की जानकारी के लिए सुबह होने अथवा अखबार आने तक का इंतजार करेंगे।

वेबमीडिया की बढ़ती संभावनों के ही मद्देनजर प्रिंट मीडिया ने ईपेपर मुहैया कराया है लेकिन यह भी प्रिंट का ही प्रतिरूप होने से शायद उतनी लोकप्रियता न हासिल कर सके। वजह भी साफ है, एक तो प्रिंट मीडिया बड़े–बड़े कॉरपोरेट घरानों के हाथों की कठपुतली बन चुकी है। दूसरा यह कि इसकी लोकप्रियता, उपयोगिता और विश्वसनियता तब थी जब अखबार मिशन का हिस्सा हुआ करता था, आज उस मानसिकता को लाभ–हानि से जोड़ कर इसे कारोबार का रूप दे दिया गया है। तीसरा यह कि घर–घर पहुंच बनाने में सफल बड़े अखबार प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से किसी न किसी राजनीतिक घरानों से प्रभावित हैं। उनकी अपनी ढपली अपना राग है। उनका खबरों के प्रति अगल मापदंड है। अखबारों से जुड़े पत्रकारों के भी हाथ बंधें हैं। उनके सामने अपनी खबरों को कॉरपोरट घरानों द्वारा तय किए गए मानकों के अनुरूप देने की विवशता है। जनता कहें अथवा पाठक वर्ग वह भी दिग्भ्रमित है। वह यह तय नहीं कर पा रहा है कि सच्चा कौन–झूठा कौन। चौथा और अहम यह कि भारतीय संस्कृति–सभ्यता, मान–मर्यादाओं की अनदेखी कर समाज के 15 फीसदी संपन्न तबकों के पाश्चात्य रहन–सहन को शेष 85 फीसदी सामान्य तबकों के सामने परोसने की नापाक कोशिशों से आम पाठक मर्माहत हैं। वह विकास चाहता है लेकिन अपनी सभ्यता–संस्कृति की बुनियाद पर। वह समाज को टूटते–बिखरते और युवाओं को अनियंत्रित होते देख रहा है। इसके लिए वह इलेक्ट्रानिक मीडिया के साथ ही प्रिंट मीडिया को जिम्मेदार मानता है। मजबूत विकल्प का अभाव और घटना, दुर्घटना और परिवर्तनों को जानने की ललक में लोग प्रिंट मीडिया को स्वीकार किए हुए हैं।

दौड़ती–भागती दुनियां के इस दौर में पाठक वर्ग ऐसे सूचना तंत्र की जरूरत महसूस कर रहा है जो उसे सूचना देने के साथ ही उसके पीछे की हकीकत को भी निष्पक्ष भाव से उसके सामने रखे। एक ऐसे पटल की भी जरूरत शिद्दत से महसूस की जाने लगी है जो विकसित समाज के साथ ही पिछड़े समाज की हकीकत को हूबहू पेश कर सके। वैसे भी अब चाहत सिर्फ सूचना तक सीमित नहीं रही। लोग न्यूज–व्यूज के साथ ही कुछ अंदर की बातों को भी पीड़ित–प्रभावित लोगों की जुवानी जानना चाहते हैं। प्रिंट और इलेक्ट्रनिक मीडिया के गिने–चुने साहित्यकारों, व्यंगकारों और लेखकों के जमीनी हकीकतों से दूर विचारों को सुनते–पढ़ते पाठक ऊब चुकी है। अब जो नया तबका अंगड़ाई ले रहा है, उसके पास कंप्यूटर है, लैपटॉप है लेकिन समय कम है। फुर्सत मिलते ही उसे सूचना चाहिए और साथ में उससे जुड़ी आगे–पीछे की जानकारी भी। वह भी एक क्लिक में। ये सारी चाहत वेबमीडिया ही पूरी कर सकता है। इस बात से भी इंकार नहीं किया जा सकता कि प्रिंट मीडिया के पास सीमित स्थान है और वेबमीडिया के पास स्थान का कोई अभाव नहीं है। दूसरी बात यह भी है कि सामान्य तबके के दुःख–दर्द को प्रिंट मीडिया मौजूदा राजनीति, अखबार के विस्तार और लाभ–हानि की कसौटी पर कसने के बाद ही स्थान देगा। बेवमीडिया के सामने ऐसी कोई बाध्यता सामने नहीं आएगी।

आज अमूमन सभी राष्ट्रीय और स्थानीय समाचार पत्र वेब पत्रकारिता में कूद चुके हैं और नेट पर अपने पत्रों का संस्करण निकाल रहे हैं। हालांकि भारत में वेब क्षेत्र में पत्रकारिता अलग से काफी कम

हो रही है सिर्फ गिने चुने ही वेब साइर्ट इस क्षेत्र में अलग से हैं। वहीं दैनिक पत्र अपने समाचार पत्रों के संस्करण को केवल नेट पर छोड़ देते हैं। देखा जाये तो भारत में प्रिंट और इलेक्ट्रोनिक मीडिया ने जिस तरह से स्वत्रंत नेटवर्क फैलाया है उस तरह से वेब पत्रकारिता का नेटवर्क नहीं है। अगर अखबारों के संस्करण को थोड़ी देर के लिए छोड़ दिया जाये तो भारत में देशी वेब पत्रकारिता नहीं के बराबर मिलेगा। प्रिंट और इलेक्ट्रोनिक मीडिया जो अपना नेट संस्करण निकालते हैं वे अलग से इसकी व्यवस्था तक नहीं करते हैं। उनके पास वेब पत्रों के लिए अलग से विभाग कार्य नहीं करता। इसकी सबसे बड़ी वजह शायद यह है कि इससे अतिरिक्त आय नहीं के बराबर होती है। हालांकि कुछ साइटों ने अपने ई–अखबार के लिए अलग से संवाददाता भी रखे हैं। वेब पत्रकारिता के लिए अलग से टीम नहीं रहने से मौलिकता का भी अभाव रहता है। खबरों में अपडेट का अभाव साफ दिखता है। वैसे एक–आध साइटें हैं जो खबर अपडेट करने की दिशा में सक्रिय है। वेब पत्रकारिता को व्यापक बनाने के लिए अलग से रिर्पोटर रख कर ऑनलाइन रिर्पोट फाइल करवाने की आवश्यकता है। साथ ही प्रिंट और इलेक्ट्रोनिक मीडिया की तरह इसे अलग रख कर इसके विकास के प्रति जबावदेही होना होगा। केवल अखबारों के संस्करण नेट पर छोड़ने से काम नहीं चलेगा। वेब पत्रकारिता को स्थापित करने के लिए इसकी अपनी दुनिया होनी चाहिए ताकि यह अपनी मौलिकता के साथ पहचानी जाये।

खैर, जो भी हो, आने वाले दिनों में वेब पत्रकारिता निश्चित तौर पर वह मुकाम पायेगा जो प्रिंट और इलेक्ट्रोनिक मीडिया ने पाया है। तेजी से बड़े शहरों से होता हुआ छोटे शहरों और अब कस्बा–ग्रामीण क्षेत्रों में पैर पसार रहा है।

■

आज की मीडिया रोग ग्रसित हो चुकी हैः श्री रामबहादुर राय

पाथेय कण संस्थान ने 13 मई 2012 को इन्द्रलोक सभागार, भट्टारक में पत्रकार सम्मान समारोह आयोजित किया। इसमें मूल्य–आधारित पत्रकारिता के लिय 'नवोदित पत्रकार सम्मान' तथा 'जागृत ग्राम' पुरस्कार दिया गया। कार्यक्रम में मुख्य अतिथि के तौर पर वरिष्ठ पत्रकार व प्रथम प्रवक्ता के संस्थापक संपादक श्री रामबहादुर राय तथा कार्यक्रम की अध्यक्षता साप्ताहिक पांचजन्य के सम्पादक श्री बल्देव भाई शर्मा ने की।

कार्यक्रम में वरिष्ठ पत्रकार श्री श्याम आचार्य को पाथेय–कण का प्रथम 'लोकमान्य तिलक सम्मान' से पुरस्कृत किया गया। पुरूस्कार के रूप में आचार्य जी को एक लाख एक हजार रुपये की राशि भेंट की गई। इसी कार्यक्रम में डूँगरपुर के पुनीत चतुर्वेदी तथा एच.बी.सी. जयपुर के आशीष पाराशर को 'नवोदित–पत्रकार सम्मान' से सम्मानित किया गया। पुरस्कार राशि के तौर पर दोंनो को ग्यारह – ग्यारह हजार रुपये एवं स्मृति चिन्ह भेंट किये गये।

कार्यक्रम के मुख्य अतिथि श्री राम बहादुर राय ने मीडिया पर टिप्पणी करते हुए कहा कि आज की मीडिया रोग ग्रसित हो चुकी है। हमें इसे सुधारने की आवश्यकता है। पेड न्यूज पर राय ने कहा कि खबरों के बेचने खरीदने के साथ–साथ अब तो सामान्यतः संस्थानों की खरीद–फरोक्त भी शुरू हो चुकी है। श्री राम बहादुर राय ने कहा '' मीडिया पर एकाधिकार करने वाले समूह लोकतन्त्र के लिए खतरा है और यह देश के नीति व निर्माताओं को दबाने के लिए किया जा रहा है।'' इन सभी समस्याओं से निजात पाने के लिये तीसरे प्रेस आयोग का गठन होना जरूरी है।

कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रहे पॉचजन्य के सम्पादक श्री बल्देव भाई शर्मा ने कहा कि वर्तमान की मीडिया के घर को आग लगी है और वो भी घर के ही चिराग से। मीडिया पर आरोप लगाते हुए बल्देव भाई ने कहा जेहादी आतंकवाद, माओवादी व नक्सलवाद के नाम पर मीडिया सामप्रदायिक बन जाता है।

कार्यक्रम के प्रारंभ में जयपुर बम धमाकों में मारे गये लोगों की आत्मा की शांति के लिये दो मिनट का मौन भी रखा गया।

समाज से ज्यादा ताकतवर कोई नहीं : विश्नोई

अनुजा इंदु

राष्ट्रवादी पत्रिका 'राष्ट्रदेव' के नोएडा संस्करण का लोकार्पण नारद जंयती के अवसर पर 'प्रेरणा' में हुआ। इस अवसर पर आये मुख्य अतिथि व स्वतंत्र पत्रकार हेमन्त विश्नोई ने कहा "समाज से ज्यादा ताकतवर कोई नहीं है और इस समाज की चिंता मीडिया, अख़बार वाले और सामाजिक संगठन ही करते हैं।"

विश्नोई जी ने बताया कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने विभाजन के समय भी समाज के लोगों की बहुत चिंता की। लेकिन इस पर प्रतिबंध लगाने का अरोप लगा और संघ प्रमुख को जेल में डाल दिया गया। विश्नोई जी ने आज के सामाजिक परिदृश्य में बताया कि समाजशास्त्र के अनुसार समाज तीन तबके में बंटा हुआ है– गुण्डे–गिरोह, पुलिस और आम जनता। गुण्डे–गिरोहों का तबका आज के समय में मजबूत वर्ग है, पुलिस प्रशिक्षित वर्ग में आती है व ठीक ढंग से काम भी करती है और आम जनता कमजोर वर्ग में आती है लेकिन आम जनता के आगे किसी की नहीं चलती। चूंकि इमरजेंसी के समय गुण्डे बदमाश थे, सरकार थी, पुलिस थी फौज थी लेकिन चुनाव कराने पर तत्कालीन सत्ता बनाने के लिए सिर्फ जनता की ही चली और सत्ता भी उस लाइन पर आई जिसपर आकर देश आगे बढ़ सकता था।

उन्होंने यह भी कहा कि मीडिया का काम अच्छे लोगों को इकट्ठा कर समाज को शिक्षित करना है। जब तक हम अखबार पढ़ेंगे नहीं, उस पर प्रतिक्रिया नहीं देंगे तब तक सब व्यर्थ है। मीडिया तो हवा की तरह है कि जब चल जाये तो बस सारे में प्रचार हो जायेगा। मीडिया की खबरें नौकरशाहों से निकलती है। हेमन्त जी ने कहा कि अख़बार में छपी हर ख़बर प्लान्टिड होती है क्योंकि सारी दुनियां में प्रचार करने के लिए अख़बार का ही प्रयोग होता है।

विश्नोई जी ने विज्ञापनों पर टिप्पणी करते हुए कहा कि विज्ञापन अर्धसत्य होते हैं। उन्होंने बताया कि आज से करीब दो दशक पहले कोई ग्रामीण नमक से मंजन करता था तो विज्ञापनों में कहा जाता था कि नमक दॉतों को हानि पहुॅचाता है परन्तु आज विज्ञापनों में पूछा जाता है कि 'क्या आपके टूथ पेस्ट में नमक है।' ऐसे ही 50 कि दशक में कहा जाता था कि मां का दूध बच्चे के लिए हानिकारक होता है लेकिन आज हम विज्ञापनों में देखते हैं कि बच्चे को लंबे समय तक मां के दूध का सेवन करने की सलाह दी जाती है।

कार्यक्रम के वक्ता और राष्ट्रदेव के संपादक अजय मित्तल ने पत्रकारिता के इतिहास पर प्रकाश डालते हुए बताया कि हिन्दी भाषा में प्रथम समाचार पत्र ज्येष्ठ कृष्ण द्वितीय 1826 में शुरू हुआ था। उस समय तक सिर्फ तीन भाषाओं में समाचार पत्र छपते थे– अवधी, फारसी और बांग्ला। चूंकि अवधी और फारसी उस समय राज्य भाषायें थी। तभी कानपुर निवासी पं जुगल किशोर मिश्र जी ने सोचा कि हिन्दी भाषा सारे समाचार पत्रों से वंचित है और हिन्दी की कमी को दूर करने के लिए पं जुगल किशोर मिश्र ने नारद जंयती पर 'उदन्त मार्तण्ड' नाम का साप्तहिक अखबार निकाला। इससे पहले अखबार

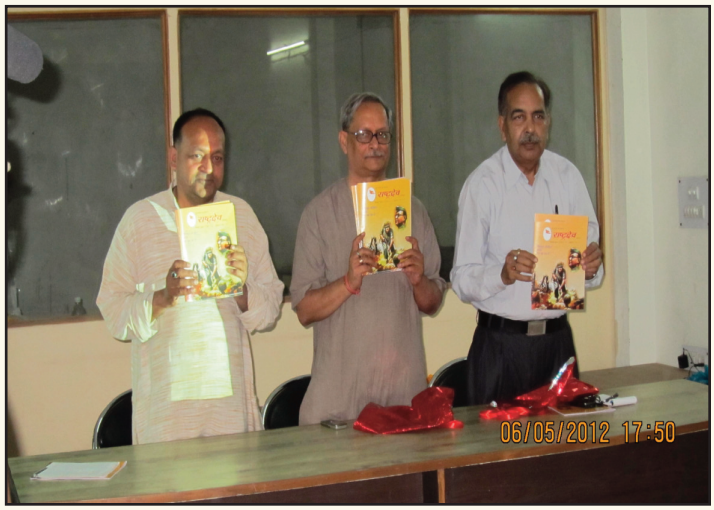

ईस्ट इंडिया कंपनी की तरफ से छपते थे। कंपनी के लोग अपने हिसाब से बगैर सत्य की परवाह किये ख़बर छपवाते थे। 'उदन्त मार्तण्ड' ने सिर उठाकर बिना राजकीय सहायता लिए काम किया। 'उदन्त मार्तण्ड' एक ऐसा अखबार था जिसने सत्य से बगैर विश्वासघात किये काम किया। आर्थिक कारणों की वजह से दिसंबर 1827 में यह अखबार बंद हो गया। लेकिन 'उदन्त मार्तण्ड' ने सरकारी और प्रतिष्ठानों के आगे बगैर सिर झुकाये काम करने की नींव रखी और 'उदन्त मार्तण्ड' ने ही भारतीय पत्रकारिता में मापदंड स्थापित किये।

इसी दौरान राष्ट्रवादी पत्रकारिता ने भाषाई एकता को बनाये रखने के लिए 'देवनागर' नाम का अखबार निकाला। इसकी विशेषता थी कि ये अखबार देश की सभी भाषा में समाचार लेकिन देवनागिरि लिपी में छपते थे। ऐसे ही 'महारथी' नाम से हिन्दी में समाचार पत्र छपता था जिसका उद्देश्य महापुरूषों के संघर्ष के बारें में बताना था, और इसी के 'मराठा अंक' में माधव राव के संघर्ष को दिखाया और 'लाजपत अंक' को पीले कागज पर लाल रंग से छापा गया था जिसे बलिदान का प्रतीक माना गया था।

कार्यक्रम के अध्यक्ष व महानगर संचालक श्री दुर्गाप्रसाद जी ने स्वतंत्र पत्रकार हेमन्त विश्नोई की बातों को सराहते हुए कहा कि नारद जयंती के दिन नोएडा 'राष्ट्रदेव' का निकलना एक ईश्वरीय कृपा है। प्लान्टिड न्यूज पर अपना पक्ष रखते हुए दुर्गाप्रसाद जी ने कहा कि 'प्लान्टिड न्यूज' तो फिर भी तत्कालीन हो सकती है लेकिन यदि व्यक्ति ही प्लान्टिड हो तो उसके दूरगामी दुष्परिणाम हैं। आज का मीडिया प्ला. न्टिड लोगों के हाथ में है।

एक निर्भीक पत्रकार यदि अपने विषय को मशाल रूपी तरीके से जला कर रखेगा तो निश्चय ही समाज रोशन होगा। चूंकि लगातार मारने से तो पत्थर पर भी चोट आ जाती है। दुर्गाप्रसाद जी ने कहा कि पत्रकार की जिम्मेदारी सत्य को स्थापित करना है।

इस लोकार्पण के मौके पर कई वरिष्ठ पत्रकार मौजूद रहे और कार्यक्रम के अंत में पत्रकारों ने 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' का उच्चारण कर कार्यक्रम की गरिमा को बढ़ाया। ■

1. लेग मैन– 'लेग मैन' उस समाचार संकलनकर्ता को कहते हैं, जो शहर में घूमकर समाचार संकलित करता है और उसे टेलिफोन पर संपादकीय विभाग को लिखा देता है।

2. लेग स्टोरी– जब कोई बड़ी खबर आती है तो उससे जुड़ी कई पूरक कथाएं भी बनती हैं, जो 'लेग स्टोरी' कहलाती हैं। जैसे– भूकंप या सीरियल ब्लास्ट या कोई अन्य दुर्घटना। ऐसे समाचारों की पूरक स्टोरी भी प्रस्तुत की जाती हैं।

3. प्रकीर्ण पत्र–पत्रिकाए– किसी विशेष उददेश्य से प्रकाशित पत्र–पत्रिकाएं जो किसी एक विषय पर आधारित होती हैं, 'प्रकीर्ण पत्र–पत्रिकाए' कहलाती हैं। जैसे– सांस्कृतिक–पत्रिका, शोध–पत्रिका अथवा शैक्षणिक–पत्रिका आदि।

4. समाचार प्रेषण– पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशनार्थ अथवा दूरदर्शन व आकाशवाणी में प्रसारण योग्य समाचार, सूचना आदि को प्रसारणार्थ संबद्ध कार्यालय में भेजना समाचार संप्रेषण कहा जाता है।

5. अप्रत्याशित समाचार– 'अप्रत्याशित समाचार' चौंकाने वाला समाचार होता है, जिसे सामान्य कार्यक्रम को रोक कर कम शब्दों में जारी किया जाता है। सामान्य तौर पर अप्रत्याशित समाचारों के लिए 'फ्लैश' शब्द ही इस्तेमाल किया जाता है।